

ॐ

अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद्

की

भाषाटीका

सरल मध्यदेशी हिन्दी भाषामें

कौलाल्य नगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर
नागर ब्राह्मण

ने

अनुवादकर प्रकाशितकिया

सोई

सर्वजनोंके हितार्थ

पहलीवार

स्थानलखनऊमें

श्रीमान्मुन्शी नवलकिशोरजीके

महायन्त्रालयमें

मुद्रित भया

सन् १८८४ ई०

ॐ

अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद्

की

भाषाटीका

सरल मध्यदेशी हिन्दी भाषामें

कोलात्व नगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर
नागर ब्राह्मण

ने

अनुवादकर प्रकाशितकिया

सोई

सर्वजनोंके हितार्थ

पहलीबार

स्थानलखनऊमें

श्रीमान्मुन्शी नवलकिशोरजीके

महायन्त्रालयमें

मुद्रित भया

सन् १८८४ ई०

अनुक्रमणिका

" " इस चिन्हान्तरमें मूलके पद
' ' इस चिन्हान्तरमें मूलपदके अक्षरार्थ
[ ] इस चिन्हान्तरमें आनन्दगिरा टीकाका अनुवाद
( ) इस चिन्हान्तरमें पर्याय शब्द
~ ~ इस चिन्हान्तरमें अर्थयोजना

श्लोक

॥श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः
॥ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

इति

॥ ॐ ॥
॥ तत्सद्ब्रह्मणेनमः ॥

॥ एकमेवाद्वितीयम्ब्रह्म ॥

अथ

॥ अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् ॥

॥ इस उपनिषद्विषे कबंधी आदिक छ ऋषियोंने शिष्यभावसे पृथक् २ प्रश्नकियेहैं अरु तिन्होंके उत्तर पिप्पलादनामक आचार्यने दियेहैं। एतदर्थ इस उपनिषद्का नाम प्रश्नोपनिषद् कहतेहैं। तिसकी भाषाटीका किंचित् श्रीशंकराचार्यजीके भाष्य अरु आनन्दगिरी टीका अरु पंडित पीताम्बरजीके अनुवादके आश्रयकर श्रीगुरू सन्त माहात्मा अरु आत्मनिष्ठोंकी कृपारूप बलको पायके गुरू शिष्यके सम्वादद्वारा कहताहों ॥

॥ इस मेरे कहनेमें जो कुछ दोषहोय तिनकों सर्व पाठकजन क्षमाकर सुधारलेवें ॥

॥ ॐ ॥

॥ भूमिका ॥

॥अथर्वणवेदके मन्त्रोंसे अर्थात् परिमित (संख्याबद्ध) अक्षरवाले जे वेदके वाक्यहैं तिनको मन्त्र कहतेहैं तिनकरके बोधित जो अर्थहै तिनका विस्तारकरके— [अर्थात् अथर्वणवेदमें "ब्रह्मादेवानामित्यादि" "ब्रह्मादेवताओंको इत्यादि" मन्त्रोंसेही आत्मतत्त्वका निर्णय किया होनेसे । अरु तिस ही अथर्वणवेदविषे इस उपनिषद्रूप ब्राह्मणभागसे पुनः तिस ही आत्मतत्वका कथनहै सो पुनरुक्तिदोषहै । यह आशंका चित्तविषे होतीहै सो नहीं क्योंकि मन्त्रोंकरके संक्षेपमात्र कथनकिया जो आत्मतत्व तिस हीका यहां इस ब्राह्मणभागकरके सविस्तर प्राणकी उपासना आदिक साधनोंसहित होनेसे कथनहै एतदर्थ पुनरुक्तिदोष है नहीं । इसप्रकार कहते हुए आचार्य इस ब्राह्मणभागको प्रकटकरतेहैं ॥ यहां यह विशेषहै कि मंत्ररूप जो विद्याहै सो "परा च अपरा च" इस प्रमाणसे पर अपर भेदसे दो प्रकारकीहै । तिनमें शिक्षाआदि छः अंगोंसहित जो ऋग्वेदादि नामोंकरके विख्यात विद्या सो कर्मरूप अरु उपासनारूप होनेसे अविद्याहै तिनविषे जो दूसरी उपासनारूपहै सो द्वितीय अरु तृतीय इन

दोनो प्रश्नोंकरके प्रतिपादन कीजायगी। अरु प्रथमां जो कर्मरूपाहै सो कर्मकांडविषे वर्णन कियाहै एतदर्थ यहां उसका वर्णन नहीं करते। अरु कर्मरूप अरु उपासनारूप जो विद्याहै तिनके फल अनित्यादि दोषकरके युक्तहैं ताते मुमुक्षुकों तिनसे वैराग्यार्थ प्रथम प्रश्नविषे स्पष्ट करतेहैं। अरु प्रथमकही जे पर अपर दो विद्या तिनविषे दूसरी जो परविद्याहै सो उसकों कहतेहैं ।"अथ परायया तदक्षरमधिगम्यत"। ‘अब जिससे सो अक्षर जानिये सो पर विद्याहै’। इसप्रकार आरंभकरके समस्त मुंडक उपनिषद्से प्रतिपादनकियाहै। तिसविषे भी ।"यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः"। ‘जैसे प्रज्वलित अग्निसे सहस्रावधि चिंगारियां प्रकटहोतीहैं’ इत्यादि दोनो मन्त्रोंकरके उक्त जो अर्थहै तिसके विस्तारार्थ चतुर्थ प्रश्नहै। अरु ।"प्रणवो धनुः"। ‘ओंकार धनुषहै’ इस मन्त्रविषे जो उक्त अर्थहै तिसकों स्पष्टकरनेके अर्थ पंचम अरु षष्ठ प्रश्नहैं। इसरीतिसे यह प्रश्नउपनिषद्रूप ब्राह्मण आत्मप्रतिपादक मन्त्रोंका विस्तारसे अनुवादकरनेवालाहै। एतदर्थ ही इसके विषय अरु प्रयोजनादिक अनुबन्ध तहां ही कहेहैं एतदर्थ यहां पुनः नहींकहते। ऐसे जानना] ० अनुवादमे यह प्रश्नोपनिषद

रूप ब्राह्मण- [अपरिमित अक्षरवाला जो वेदका वाक्य तिसको ब्राह्मणकहतेहैं]- प्रारंभकरतेहैं। अरु इस उपनिषद्विषे ऋषियोंके प्रश्न अरु उत्तररूपजो आख्यायिकाहै सो विद्याकी स्तुत्यर्थहै। अरु सो ब्रह्मविद्या, कि जिसकरके अक्षरब्रह्मकीप्राप्ति होतीहै, सो आगेकहेहुए प्रकारसे सम्वत्सर (एक-वर्ष) पर्यन्त ब्रह्मचर्यसे गुरुकुलविषे वास अरु तप आदिक साधनोंकरके युक्त जो अधिकारी तिनकरके ग्रहणकरने अरु पिप्पलाद्आदिक सर्वज्ञ मुनिश्वरोंके तुल्य जो आचार्य तिनकरके कहने योग्यहै जिसकिसकरके नहीं। ऐसी विद्याकी स्तुति करतेहैं। अरु ब्रह्मचर्यादि। अर्थात् [इस ऋषियोकी आख्यायिकाका पूर्वकल्प विषे विद्यमान साधनोंके स्वरूपसे ब्रह्मचर्य अरु तप आदिक साधनोका विधानरूप अन्य प्रयोजनहै ऐसे कहतेहैं] अर्थात् वेदमे कल्पान्तरभेदनहीं सर्व कल्पोंमें वेद एक हीहै ताते इस सनातन आख्यायिकासे। ब्रह्मचर्य्यादि साधनोकी सूचनासे तिनके करनेको योग्यता सिद्ध होतीहै इति भूमिका ॥ हरिः ॐ तत् सत् ब्रह्म ॥

॥ अथ ॥

॥ प्रथमप्रश्न ॥

॥ॐ सुकेशा च भारद्वाजः, शैब्यश्च ॥
॥सत्यकामः, सौर्य्यायणी च गार्ग्यः, कौशा
॥ल्यश्चाश्वलायनो, भार्गवो वैदर्भिः, कब-
॥न्धी कात्यायनस्ते, हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनि-
॥ष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्स-
॥र्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं
॥पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥

॥ अथ ॥

॥प्रश्नोपनिषद्गत प्रथम प्रश्न भाषाटीका॥

॥ प्रारभ्यते ॥

॥१॥ ॐ ॥ श्रीगुरुरुवाच । हे सौम्य हे प्रियदर्शन अब सावधान होके प्रश्नउपनिषद्कों भी श्रवणकरो । "सुकेशा च भारद्वाजः"। (भारद्वाज) का पुत्र सुकेशा (नामवाला मुनि । अरु । "शैब्यश्च सत्यकामः"। (शिवि ऋषिका पुत्र सत्यकाम) (नामवाला मुनि । अरु । "सौर्य्यायणी च गार्ग्य"। (सूर्य्यके पुत्र सौर्य्य मुनि तिसका पुत्र सौर्य्यायणी सो गर्गगोत्रविषे उत्पन्नभया ताते गार्ग्य) नामवाला मुनि । अरु । "कौशल्यश्चाश्वलायनो"। (अश्वल ऋषि का पुत्र कौसल्य) नामवाला मुनि । अरु । "भार्गवो (

वैदर्भिः"। ‘विदर्भदेशका रहनेवाला भृगुके गोत्रविषे उत्पन्नभया ताते भार्गव’ नामवाला मुनि। अरु।"कबन्धी कात्यायनः"। ‘कत्यके पुत्र कात्यायनऋषिरूप प्रपितामह (पड़दादे) वाला कबन्धीनामक’ मुनि।"ते हैते"। ‘यह विख्यात’ छ मुनिश्वर सो। "ब्रह्मपरा"। ‘ब्रह्मपर’। अर्थात् अपरब्रह्म (प्राणोपासना) विषे तत्परहोनेकरके प्राप्तभयेहैं ताते ब्रह्मपरहैं। अथवा अपरब्रह्म जे छओ अंगोंसहित ऋगादिवेदरूप अपराविद्या तिसविषे निस्नात भये ताते ब्रह्मपरहैं। अरु— ।"ब्रह्मनिष्ठाः"। ‘ब्रह्मनिष्ठ हैं’ अर्थात्—ऋगादिवेदकरके प्रतिपाद्य जे यज्ञरूप ब्रह्म तिसके अनुष्ठानविषे निष्ठावाले होनेकरके ब्रह्मनिष्ठहैं। सो—।"परब्रह्मान्वेषमाणा" ।‘परब्रह्मकों खोजतेहुए’—जो नित्यवस्तु जाननेयोग्यहै सो क्याहै तिसकी प्राप्त्यर्थ हम अपनी इच्छाके अनुसार यत्नकरेंगें। इस अभिप्रायसे परब्रह्मकों अन्वेषणकरते हुए। अरु तिसके जाननेके अर्थ।"एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति"। ‘यह आचार्य निश्चयकरके सो सर्व कहेगा ऐसें’ विचारके।"तेह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः"। ‘वे सर्व समित्पाणिहुए पूजावान् पिप्पलादमुनिके समीप जातेहुए’ अर्थात् सुकेशाआदि छओ मुनि समिधादि लेके [यह

समिधाका जो ग्रहणहै सो यथायोग्य दातुनकाष्ठ। आदिक आचार्यके उपयोगी सामग्रीके ग्रहणार्थ। है (क्यों कि "आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य" इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणहै) अरु सूके काष्ठरूप जो समिधहै सो भी अग्निहोत्रादि कर्म्मोविषे ऋषियों। को उपयोगी होते हैं ताते उनके ग्रहणार्थ भी विधिहै। परन्तु मुमुक्षुकों आचार्यके उपयोगी पदार्थरूप भेट हाथमें लेकर शरणहोना योग्यहै यह अभिप्रायहै] सर्वकरके पूजनीय भगवान् पिप्पलादमुनिरूप आचार्यके समीप जातेभये। अर्थात् [आचार्यकों उपयोगी प्रियवस्तु सो भेटार्थ हाथमेंले समीपजाय भेट उनके आगे रख उनके चरण ग्रहणकरके हे भगवन् ("मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये") मैं मुमुक्षु आपकी शरणहों ताते। मुझकों ब्रह्मविद्याका उपदेशकरो। इत्यादि प्रकार सविनय स्वाभिष्ट वचनके उच्चारण पूर्वक साष्टांग प्रणामरूप उपसत्ति(शुश्रुषा,सेवा) कों करते भये ॥ १ ॥ ॐ तत्सत् ॥

२॥ हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार जब वे छओ मुनि पिप्पलादरूप आचार्यकी शरणभये तब। "तान् ह स ऋषिरुवाच"। तिनकों सो ऋषि स्पष्ट कहताभया। अर्थात् तिनके समीपआये छओ मुनि

॥तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव त-॥
॥पसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्य-॥
॥थ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञा-॥
॥स्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥ २ ॥

तिनकों सो आचार्य पिप्पलादमुनि स्पष्ट कहता भया॰ । पिप्पलादउवाच । "भूय एव तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ"। ः फेरभी तपसे ब्रह्मचर्यसे श्रद्धासे संवत्सरपर्यन्त सम्यक वास करो ः॰ यद्यपि तुम सर्व तपस्वी ही हो तथापि यहां फेर भी विशेषकरके नियताऽहारादिरूप तपसे अरु इन्द्रियोके संयमरूप ब्रह्मचर्यसे अरु आस्तिकभावकी बुद्धिरूप श्रद्धासे आदरवान्हुए एकवर्षके कालपर्यन्त सम्यकप्रकार गुरुकी सेवाविषे तत्परहुए निवासकरो। तिसके अनन्तर। "यथा कामं प्रश्नान पृच्छथ"। ः जैसी इच्छाहोय (तिसकेअनुसार)प्रश्नोको पूछो ः॰ जिसको जैसी इच्छा होय सो अपनी इच्छाकेअनुसार जिस विषयकी जिज्ञासाहोय तिसविषयके सम्बन्धी प्रश्नोको पूछो। "यदि विज्ञास्यामः सर्व्वं ह वो वक्ष्याम इति"। ः जब जाननेहोगे तुमारे सर्व स्पष्ट कहेगें ः। यदि हम तिस तुमकरके पूछीहुयी वस्तुकों जाननेहोगें तब तुह्मारे पूछेहुए वस्तुओंकों स्पष्ट कहेंगें [यहां

॥अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य प-॥
॥प्रच्छ। भगवन् कुतो हवा इमाः प्रजाः॥
॥प्रजायन्त इति ॥ ३ ॥

(यदि) शब्दका पर्यायरूप जो (जब) शब्दहै सो आचार्यकी निरभिमानताके लखावनेके अर्थहै कुछ अज्ञान अरु संशयके अर्थ नहीं। यह सर्व प्रश्नोंके निर्णयते बोधितहै]॥ २ ॥

३ ॥ हे सौम्य उक्तप्रकार पिप्पलादमुनि की आज्ञा नुसार कौशल्य आदि छओं मुनियोंने ब्रह्मचर्यादि साधन पूर्वक निवासकिया–। "अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ"। 'एकवर्षपीछे कात्यायनका प्रपौत्र कबन्धी समीपजायके पूछताभया' अर्थात् –जब एकवर्षपर्यंत ब्रह्मचर्य कररहे तब तिसके पश्चात् कात्यायनऋषिका पड़पौत्र (पड़पोता) कबन्धी नामवालामुनि अपने आचार्य पिप्पलादमुनि तिनके समीप जाय प्रणामकर प्रश्नकरताभया जो–। "भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति"। 'हे भगवन् यह प्रसिद्ध प्रजा किसकारणसे उपजेहैं' –हे भगवन् यह प्रसिद्ध ब्राह्मणादि प्रजा किस कारणसे उपजतीहै– ॥प्रश्न॥[वे छओ मुनिश्वर परब्रह्मके जान-

नेकी जिज्ञासावान्हुए पिप्पलादमुनिरूप आचार्य-
के समीप गये इसप्रकारसे आरंभकियेहुए इस
परब्रह्मकी जिज्ञासाके प्रकरणविषे प्रजापतिकृत
प्रजाकी सृष्टिकों विषयकरनेवाले प्रश्न अरु उत्तर
का कथन असंगतहै ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य यह
शंका चित्तमें विचारके ही प्रश्नउत्तररूप श्रुतिका
तात्पर्य कहतेहैं। यहां यह भावहै कि "तेषाम-
सौ विरजो ब्रह्मलोक इति" 'तिसकों यह निर्म-
ल ब्रह्मलोक होताहै' इसप्रकार उपासनाके समु-
च्चयकरके युक्त कर्मके कार्य ब्रह्मलोककों अरु
"अथोत्तरे इति" 'अब उत्तरायणसे' इसप्रका
र जिस ब्रह्मलोककी गतिरूप देवयानमार्गकों आ
गे इस ही प्रथम प्रश्नविषे कथनकिया होनेसे
यह अर्थ बनताहै। अरु यह उपासनाकरके
युक्त जो कर्मका कथनहै सो केवल कर्मोंका उ-
पलक्षणहै, इसप्रकार भी जानना क्योंकि केव-
ल कर्मके कार्य इन्द्रलोककों अरु तिस इन्द्रलोक
की गतिरूप पितृयानमार्गकों भी "तेषामेवैष
ब्रह्मलोकः" तिनकों ही यह ब्रह्मलोक (चन्द्र-
मंडलस्थ इन्द्रलोक) होताहै। अरु "प्रजाकामा
दक्षिणं प्रतिपद्यन्त इति" 'प्रजाकी कामनावाले द-
क्षिणायनमार्गकों पावतेहैं' इसप्रकार आगे इस
प्रथम प्रश्नविषे ही कथनकियाहोनेसे ॥ अरु यद्य

पि परब्रह्मकी जिज्ञासाके अवसरविषे यह कथन भी असंगत ही है तथापि केवल कर्मके कार्यसे अरु उपासनारूप कर्मके कार्यसे जो विरक्तहै तिसकों ही तहा अधिकारहै एतदर्थ तिस कर्मउपासनाके फलसे वैराग्यार्थ यह कहतेहैं। यद्यपि प्रश्नसे सृष्टि प्रतीतहोतीहै तथापि तिस सृष्टिके कथनविषे प्रयोजनके अभावसे सृष्टिके कथनके मिस (बहाना) करके परब्रह्मकी विद्याका फल ही यहां कहते हैं] एतदर्थ ~ मिश्रित अरु अमिश्रितरूप जो अपरब्रह्मकी विद्या अरु कर्म यह दो है तिनका जो कार्यहै अरु जो गति है सो आपर्यंत कहने योग्यहै ॥ तिस अर्थवास्ता यह प्रश्नहै ऐसा जानना योग्य है ॥ ३ ॥

४ ॥हे सौम्य उक्तप्रकार जब कबन्धीमुनिनें सृष्टिके विषयमें अपने आचार्य पिप्पलादमुनिसे प्रश्नकिया तब ~ । "तस्मै स होवाच"। तिसकेअर्थ सो स्पष्ट कहते भये ।~ उस प्रश्नकरनेवाले कबन्धीनाममुनिकों सो सर्वज्ञ आचार्य पिप्पलादमुनि शिष्यकी शंकाके निवारणार्थ कहतेभये ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे कबन्धीन् ~ । "प्रजाकामो वै प्रजापतिःस तपोतप्यत"। प्रजापति (ब्रह्मा) सो प्रजाकरनेकी कामनावालाहुआ तप

॥तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजा-॥
॥पतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स ॥
॥मिथुनमुत्पादयते । रयिञ्च प्राणञ्चेत्येतौ
॥मे बहुधा प्रजा करिष्यत इति ॥ ४ ॥

कों तपताभया। —अपनी प्रजाकों सृजनेकी का-
मनावाला प्रजापति ब्रह्मदेव सो मैं सर्वात्मा अरु
जगत्को मैं सृजों ऐसे ज्ञानवाला अरु ज्ञान कर्मके
समुच्चयकों करनेवाला अरु पूर्वकल्प सम्बन्धी
हिरण्यगर्भकी भावनाकरके युक्त अरु इसकल्प
की आदिविषे हिरण्यगर्भरूपसे सुखकों प्राप्तभया
अरु अपनि सृजीहुई स्थावरजंगमरूप प्रजाका
पति हुआ पश्चात् प्रजाकी कामनावालाहुआ अरु
जन्मान्तरविषे भावनाकिये अरु श्रुतिविषे प्रका-
शितकिये अर्थकों विषयकरनेवाले ज्ञानरूप तप
कों ! "तस्य ज्ञानमयं तपः" ! तपताभया, अर्थात्
चित्तादिकोंसे तिसके संस्कारकों जगायके उत्पन्न
करताभया अर्थात् [तहां प्रथम सूर्य अरु चन्द्र
माकी उत्पत्तिसे तिनके भावकों पायके तिसके
पश्चात् चंद्रमा अरु सूर्य इन दोनोंकरके साधने
योग्य जो संवत्सर तिस संवत्सरके भावकों पाय
के पश्चात्, ऐसे ही तिस संवत्सरके अवयवरूप
दक्षिण अरु उत्तर दो अयन अरु मास पक्ष दिन

रात्र इनके भावकों पायके तिसके पश्चात् ग्रयग आदिकोंके कमसे साधनेयोग्य व्रीही यवादि अन्नभावकों अरु रेतभावकों पायके पश्चात् तिस रेतसे प्रजाकों उत्पन्नकरों ऐसे विचारके]। "स तपस्तप्त्वा"। ‹ सो तपकों तपिके › ~ सो प्रजापति उक्तप्रकार श्रुतिउक्त अर्थके ज्ञानरूप तपकों तपिके अर्थात् विचारके ~। "स मिथुनमुत्पादयते रयिञ्च प्राणञ्चेति"। ‹ सो रयि अरु प्राण इन दोनों कों उत्पन्न करताभया › ~ प्रजापति सृष्टिके साधन रूप ‹ रयि › ~ अर्थात् [यहां धनके वाची रयि पदकरके भोज्यपदार्थोंके समूहकों लक्ष्यकरायके अरु उन भोज्य पदार्थोंकों चन्द्रमाके किरणोंके अमृतकरके युक्तहोनेसे तिसद्वारा चन्द्रमाकों लक्ष्यकरतेहैं इस अभिप्रायसे कहतेहैं] ~ अन्नरूप चन्द्रमा अरु अन्नके भोक्ता प्राण [अर्थात् ! "अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः प्राणापान समायुक्तो पचाम्यन्नं चतुर्विधम्"। ‹ मैं वैश्वानर (जठराग्नि) रूपहोके प्राणियोंके देहप्रति आश्रयकों पाया हों अरु प्राण अपानवायुकरके युक्त हुआ चारप्रकारके अन्नकों पचावताहों › इस गीतास्मृतिके वाक्य प्रमाणसे अग्निकों प्राणके सम्बन्धसे प्राणशब्दकरके भी अग्निरूप भोक्ताही लक्ष्यकरायाहै इस अभिप्रायसे यहां कहतेहैं] अर्थात् प्राणरूप

॥आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा
॥रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्च तस्मा-
॥न्मूर्त्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥

अग्नि सूर्य इन दोनोंकों उत्पन्नकरता भया ॥पु० ॥ क्या विचारके करताभया ॥उ०॥ हे सोम्य यह विचारके कि । "एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यतइति" ।यह दोनों मेरी बहुतप्रकारकी प्रजा करेंगें ऐसे। अर्थात् यह दोनो अन्न (चन्द्रमा) अरु तिस-का भोक्ता अग्नि (सूर्य) सो मेरी इच्छाके अनु-सार अनेक प्रकारकी, प्रजाकों करेंगें ऐसे चि-न्तनकरके ब्रह्मांडकी — अर्थात् [अग्नि (सूर्य) अरु अन्न (चन्द्रमा) कों ब्रह्मांडके अन्तरगत होनेकरके ब्रह्मांडकी उत्पत्तिके अनन्तर उनकी उत्पत्ति होतीहै इस अभिप्रायसे यहां कहतेहैं] — उत्पत्तिके क्रमसे सूर्य अरु चन्द्रमा कों प्रजा-पति सृजताभया ॥ ४ ॥

५॥ हे सोम्य तिन दोनोंमें । "आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा"। ।सूर्य्य निश्चयकरके प्र-सिद्ध प्राण (अरु) अन्न ही चन्द्रमा है । अर्थात् प्रजापतिसे ब्रह्मांडान्तर्गत प्रकटकिये जे सूर्य्य । अरु चन्द्र तिनदोनोंमें सूर्य्यजोहै सो निश्चयकरके

लोकमें प्रसिद्ध प्राणरूपहुआ अन्नका भोक्ता अग्निहै अरु निश्चयकरके अन्नरूप चंद्रमाहै। परन्तु यह एक भोक्तारूप अरु एक अन्न भोग्य रूप सो दोनों एक ही प्रजापतिहै ॥प्र०॥ चन्द्र अरु सूर्य इन दोनोंकी जब प्रजापतिभावसे एकताहै तब एककों भोक्तापना अरु दूसरेकों भोग्यपना यह विषमभेद कैसे बनेगा ॥उ०॥ यह जो एक ही प्रजापतिके विषे भोग्य भोक्तारूप विषम भेदहै सो गौण मुख्य भावका कियाहै। अर्थात [जिस एकही प्रजापतिकों (क्रियाशक्तिके आश्रय) गौणभाव कहनेकी इच्छासे अन्न (भोग्य) पनाहै अरु (ज्ञानशक्तिके आश्रय) प्रधानभाव के कहनेकी इच्छासे भोक्तापनाहै यह भेदहै] ॥प्र०॥ यह भेद कैसेहै ॥उ०॥। "रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तञ्चामूर्तञ्च तस्मान्मूर्त्तिरेवरयिः५" 'जो मूर्त अरु अमूर्त है सो सर्व यह अन्नहीहै' अर्थात् जो स्थूल अरु सूक्ष्मरूप मूर्त अरु अमूर्त जगत्है सो सर्व यह अन्न (भोग्य) रूप ही है। ॥प्र०॥ मूर्त्तरूप अन्न अरु अमूर्त्तरूप भोक्ता। इन दोनोंकों भी जब अन्नमयता (चन्द्ररूपता) ही है तब । "रयिरेव चन्द्रमा" 'अन्न ही चन्द्रमाहै' ऐसा जो पूर्व वेदने कहा सो कैसे बनेगा ॥उ०॥ हे सौम्य जब मूर्त्त (अन्न) अरु अमूर्त्त (भोक्ता)

॥अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्र-॥
॥विशति तेन प्राच्यान् प्राणान्रश्मिषु ॥
॥सन्निधत्ते । यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदु-॥
॥दीचीं यदधो यदूर्द्ध्वं यदन्तरा दिशो य-॥
॥त्सर्व्वं प्रकाशयति तेन सर्व्वान् प्राणान्॥
॥रश्मिषु सन्निधत्ते ॥ ६ ॥

यह दोनो विभागकरके गौण अरु प्रधानभाव-
से कहनेकों इच्छितहोय तब अमूर्त्तरूप (भोक्ता)
प्राणसे मूर्त्तरूप (भोग्य) द्रव्यकों भुक्त होनेसे।
मूर्त्तकों ही अन्नपना है] ताते पृथक्किये अमू-
र्त्तसे जो अन्न मूर्त (स्थूल) मूर्त्तिहै सोई अन्नरू
पहै। क्यों कि अमूर्त्त सूक्ष्म प्राणरूप भोक्ताकर-
के भोगाहुआहै ताते ॥ ५ ॥

---

६ ॥हे सौम्य ताते अमूर्त्त भी प्राण भोक्ता जो
अन्नहै तिस सर्वरूपही है ॥ प्र०॥ कैसे सो सर्व-
रूपहै ॥ उ० ॥ । "अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं
प्रविशति"। 'अब सूर्य्य उदयहुआ जो पूर्व दिशा
केअर्थ प्रवेशकरताहै' तिसकरके उस पूर्वदिशा
कों अपने प्रकाशकरके व्याप्तकरताहै॰ । "तेन।
प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते"। 'तिससे पूर्व
दिशाके अन्तर्गत प्राणिनकेताईं किरणोविषे ।

प्रवेशाकरताहै ; →तिस अपनि व्याप्तिसे पूर्वदिशा के अन्तर्गत सर्व प्राणधारियोंकों अपने प्रकाश रूप व्यापक किरणोंविषे प्राप्तहोनेसे प्रवेशाकरता है । अर्थात् अपनारूप करताहै । तैसे ही→। "स दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्द्ध्वं यदन्तरादिशो"। ‘जो दक्षिणदिशाके अर्थ, जो पश्चिम दिशाके अर्थ, जो उत्तरदिशाके अर्थ, जो अधो,जो ऊर्द्ध्व, जो बीचकी दिशाके अर्थ ; →जो पूर्वदिशाके अर्थ प्रवेशाकरताहै सो तैसेही दक्षिण पश्चिम, उत्तर नीचे ऊपर मध्यकी अर्थात् अग्नि ईशानादि कोणकी दिशाओंके अर्थ प्रवेशाकरताहै । अरु→। "यत्सर्वं प्रकाशयति"। ‘जो सर्वकों प्रकाशताहै ; →जो अन्य सर्व जगत्कों प्रकाशताहै । अरु । "तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते"। ‘तिससे सर्व प्राणियोकों किरणोविषे प्रवेशाकरताहै ; ; →तिस अपने प्रकाशकी व्याप्तिसे सर्वदिशाविषे स्थित सर्व प्राणियोंकों किरणोंविषे प्रवेशाकरता वा धारता है ॥ ६ ॥

७ ॥ हे सौम्य । "स एष वैश्वानरो विश्वरूपः" ‘सो यह वैश्वानर विश्वरूपहै ; अर्थात् सो यह भोक्ता प्राण वैश्वानर सर्वात्मा विश्वरूप है । अरु→। "प्राणोऽग्नि रुदयते"। ‘प्राण अरु अग्निरूप

॥स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणो-
॥ऽग्निरुदयते । तदेतदृचाभ्युक्तम् ॥७ ॥
॥ विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परा-
॥यणं ज्योतिरेकं तपन्तम् ॥

उदय होताहै ;— जो वैश्वानर विश्वरूपहै सो विश्व का आत्माहोनेसे प्राण अरु अग्निरूपहै अरु सोई भोक्ता दिन दिनविषे सर्वदिशाको अपनारूप अर्थात् प्रकाशरूप करताहुआ उदय होताहै । अरु ०—"तदेतदृचाभ्युक्तम् ७"। ' सो यह ऋचाने भी कहाहै ;— सो यह कथनीय वस्तु आगेके अष्टम वाक्यमय वेदके मंत्ररूप ऋचाने भी कहाहै ॥७॥

८ ॥ हे सौम्य ।"विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्"। ' सर्वरूप किरणों वाला ज्ञानवान् आश्रय ज्योति अद्वितीय एक तापके करनेवाले ; अर्थात् सर्वरूप किरणोंवाला ज्ञानवान् सर्वप्राणका आश्रय अरु सो सर्वप्राणियोंका चक्षुरूप ज्योति अद्वैत अरु तापक्रिया के करनेवाले अपने आत्मरूप सूर्य्यको ब्रह्मवेत्ता पंडित जानते भये ॥ प्र० ॥ कौन यह है कि जिस को ब्रह्मवेत्ता पंडित जानते भये ॥ उ० ॥ ।"सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः"। ' अनेक किरणोंवाला

॥सहस्त्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः
॥प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः ॥ ८ ॥
॥संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने द-॥
॥क्षिणञ्चोत्तरञ्च । तद्ये वै तदिष्टापूर्त्ते कृत-
॥मित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभि
॥जयन्ते ॥

अरु अनेकप्रकारकरके वर्त्तमान ' अर्थात् अनेकप्रकार प्राणियोंके भेदकरके वर्त्ताहुआ । अरु ८ । "प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः" । ' प्रजाओंके मध्य उदितहोताहै यह सूर्य्य है ' — प्रजा (प्राणधारि) योंके मध्य चैतन्यरूपताकरके उदित (प्रकट) होताहै तिसकों ब्रह्मवेत्ता पंडित यह सूर्य्यहै ऐसा तिसकों जानते भये ॥ ८ ॥

९ ॥हे सौम्य जो यह अन्नरूप मूर्त्तिमय चन्द्रमाहै अरु अन्नका भोक्ता अमूर्त्तमय प्राणरूप सूर्य्यहै सो यह एक ही जोडा सर्वरूपहै । अरु यह दोनो मेरी बहुतसे प्रकारकी प्रजाकों करेंगे ॥ प्र० ॥ कैसे करेंगें ॥ उ० ॥ चन्द्रमारूप अन्न ५ अरु सूर्य्यरूपप्राणकों संवत्सर आदिक द्वारा प्रजाकी उत्पत्तिका कर्त्तृत्वपनाहै सोई यहां वेद भगवान् कहते हैं । "संवत्सरो वै प्रजापतिः" । ५

'संवत्सर ही प्रजापतिहै' अर्थात् संवत्सरस्वरूप जो काल है सोई प्रजापतिहै। क्यों कि संवत्सर कों तिस प्रजापति करके निर्वाह कियाहै तातें अरु जिसकरके चन्द्रमा अरु सूर्य इन दोनोंसे निर्वाह करनेयोग्य जो तिथि दिवस रात्रियोंका समुदायरूप जे संवत्सरहै सो उन चन्द्र अरु सूर्यसे अपृथक् होनेसे सोईरूप है। तिसकरके सो संवत्सर भी वो युगलरूप ही है। ऐसे यहां कहतेहैं। "तस्यायने दक्षिणञ्चोत्तरञ्च" 'तिसके दक्षिण अरु उत्तररूप दो अयन (मार्ग) हैं' अर्थात् तिस संवत्सररूप प्रजापतिके दक्षिण अरु उत्तर यह दोनों प्रसिद्ध छः छः मासरूप अयन (मार्ग) है। अरु जिस दक्षिण अरु उत्तर मार्गकरके सूर्यजो है सो क्रमसे केवल कर्मिष्ट अरु उपासनाकरके युक्त कर्मकरने वाले जनोके पावनेयोग्य लोककों पावनकरताहुआ जाताहै ॥ प्र०॥ सो कैसेहै ॥ उ०॥ "तद्ये वै तदिष्टापूर्त्ते कृतमित्युपासते"। 'जो ऐसे निश्चयकर तिस इष्ट अरु पूर्तरूप कृत (कर्म) कों उपासतेहैं'॥ अर्थात् केवलकर्मी अरु कर्म उपासनाके समुच्चय सेवनकरनेवाले जनहैं तिन में ब्राह्मणादिकों विषे जो जन इसप्रकार निश्चय करके तिन इष्ट अरु पूर्त अर्थात् [अग्निहोत्र,

तप,(कृच्छ्रचान्द्रायणादि)सत्यभाषण देवतोका१ आराधन अतिथिपूजन अरु वैश्वदेवरूप जो कर्महैं तिनकों अथवा पंच यज्ञरूप नित्यकर्मकों१ इष्ट कहते हैं अरु वापी,कूप,तड़ाग, अरु देवालय,अन्नदान, अरु देवताओंके निमित्त आरामादिक बनवावने, इत्यादि जो कर्महैं सो पूर्त्त है] १ इत्यादि जे कर्महैं तिसकों ही उपासते (यथाविधि करते) हैं अकृत (नहींकरनेयोग्य) तिसकों नहीं ।"ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते"। 'सो चन्द्रमाविषे भये लोककों ही पावतेहैं' अर्थात् जो पुरुष निषिद्ध कर्मोंकों त्यागके इष्टपूर्त्तरूप कर्मकों उपासतेहैं सो चन्द्रमंडलविषे उभयरूप प्रजापतिके अंशमय भोज्य (अन्न) रूप लोकोंकों ही पावतेहैं क्यों कि चन्द्रमाविषे भयेलोकोंकों कर्मरूपत्वहोनेसे । अरु ।"त एव पुनरावर्त्तन्ते" 'सो पुनः आवृत्ति होतेहैं' अर्थात् जो पुरुष इष्टापूर्त्तादि कर्मकरके चन्द्रलोककों पावतेहैं सोई पुरुष अपने पुण्यकर्मोका भोगोंद्वारा क्षयहोनेसे१ पुनः जन्म मरणरूप आवृत्तिकों ही पावतेहैं उनका आवागमन नहीं छूटता ।"तस्मादेते ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते"। 'ताते यह ऋषि अरु प्रजाकामा दक्षिणायनसे पावते हैं' अर्थात् चन्द्रलोककों प्राप्तभये पुनः इसलोकविषे आवतेहैं१

॥ त एव पुनरावर्त्तन्ते तस्मादेते ऋषयः॥
॥प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते एष ह वै॥
॥रयिर्यः पितृयाणः ॥ ९ ॥

ताते यह स्वर्गके द्रष्टा अर्थात् चन्द्रलोकके द्रष्टा क्योंकि चन्द्रलोककों भी स्वर्गत्वहै। ऋषि अरु प्रजाकी कामनावाले गृहस्थ सो कहेप्रकार अन्नमय प्रजापतिरूप चन्द्रमाकों कर्मोंका फलरूपहोने करके इष्ट अरु पूर्त्तरूपकर्मसे निर्वाह करतेहैं। एतदर्थ अपने पूण्यकर्मरूप ही दक्षिणायनमार्ग से उपलक्षित (लखायेहुए) चन्द्रलोककों पावतेहैं अरु। "एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ९"। (यह पितृयान निश्चयकरके प्रसिद्ध अन्नहै) अर्थात् यह जो पितृयानकरके लक्षित चन्द्रमाहै सो निश्चयकरके प्रसिद्ध अन्न ही हैं ॥ ९ ॥

१०॥ हे सौम्य। "अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया विद्यया"। (अब उत्तरमार्गकरके तपकरके ब्रह्मचर्यकरके श्रद्धाकरके विद्याकरके अर्थात् दक्षिणायनसे इतर जो उत्तरायनमार्ग तिसविषे जो चलनेवाले पुरुषहैं सो तप (प्राणायामादि) करके, अरु शमदमादि लक्षणरूप ब्रह्मचर्यकरके, अरु विश्वासलक्षणरूप श्रद्धाकरके।

॥ अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्य्येण ॥
॥श्रद्धया विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यम-॥
॥भिजयन्ते ॥

अरु विद्याकरके, अर्थात् प्रजापतिके तादात्म्यकों विषयकरनेवाली अहमग्रे उपासना तिसकरके "आत्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते"। "आत्माकों जानके आदित्यकों पावते हैं" अर्थात् समस्त स्थावर जंगमके आत्मा अरु प्राणरूप सूर्य्यकों "अहमस्मि भावसे" जानके प्राणमय सर्व्व अन्नके भोक्ता सूर्य्यलोककों पावताहै। "एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणं" "यह ही प्राणोका आश्रयहै (अरु) यह ही अविनाशिहै (अरु) यह ही अभयहै (अरु) यह ही परमगतिहै" अर्थात् यह ही जगदात्मा सूर्य्य सर्व प्राणोका समष्टिरूप आश्रयहै अरु यह ही अविनाशिहै ताहीतें भयरहित अभयहै यह चन्द्रमावत् वृद्धि क्षयके भयवाला नहीं। अरु यह केवल उपासनावाले अर्थात् पञ्चाग्निविद्या अरु वैश्वानर आदि विद्याकी रीतिसे अथवा प्राण सूर्य्य आदिकोंकी अहमग्रे उपासना करनेवाले अरु कर्मउपासनाके समुच्चय सेवनकरनेवाले पुरूषोंकी परमगतिहै क्योंकि। "एतस्मान्न पुनराव-

॥ एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतम-॥
॥भयमेतत् परायणमेतस्मान्न पुनरावर्त्त-॥
॥न्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥ १० ॥

र्त्तन्त"। ‘इससे पुनरावृत्तिकों पावते नहीं’ अर्थात् जैसे उपासनासे रहित केवल कर्म करनेवाले पुरुष चन्द्रलोककों पायके फेर इसलोकविषे आवतेहैं, तैसे उपासनाके करनेवाले किंवा समुच्चयके करनेवाले सूर्य्यलोककों पायके पुनरावृत्तिकों पावते नहीं। अरु। "इत्येष निरोधः"। ‘ऐसे यह निरोधहै’ अर्थात् तिस उपासनासे रहित होनेकरके सूर्य्य (उत्तरायण) से रोकेहुए केवल। कर्मकारनेवाले अविद्वान् पुरुष आत्मा अरु प्राणमय संवत्सररूप सूर्यकों पावते नहीं ताते इसप्रकार सोई यह संवत्सर अविद्वानोका अप्रावृत्तिमें निरोधहै। अरु। "तदेष श्लोकः"। ‘तिसविषे यह श्लोकहै’ अर्थात् इस कहेहुए अर्थविषे यह अग्रिम एकादशावां वाक्यमय श्लोकरूप वेदका मन्त्र प्रमाणहै ॥ १० ॥

११ ॥ हे सौम्य। "पञ्चपादं"। ‘पंचपादहै’। अर्थात् इस संवत्सररूप सूर्य्यके पांचऋतु पादों (चरणों) वत् पांचपादहैं [दो दो मासके ऋतु

॥ पंचपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव ॥
॥आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम् ॥

यद्यपि छ हैं तथापि यहां जो श्रुतिने पांचऋतु कहीहै सो हेमन्त अरु शिशिरकी एकरूपता होनेसे कहीहै] तिन ऋतुरूप पांचपादोंकरके यह। सूर्य्य जैसे चरणोंसे पुरुष, तैसे चलताहै ताते इसकों पांचपादवाला कहतेहैं। अरु। "पितरं"। (पिताहै) जिसकों पांचपादवालाकहतेहैं तिस। संवत्सररूप सूर्य्यकों अन्नादि सर्व्वका जनकपना। होनेसे इसकों पितर कहतेहैं। अरु। "द्वादशाकृतिं"। (बारह अवयववालाहै) जो पंचपादवाला सर्वका पिता संवत्सररूप सूर्य्यहै तिसके द्वादशमासात्मक षट्ऋतुरूप अवयवहैं ताते इसकों द्वादशाकृति कहतेहैं अथवा द्वादशमासोंकरके इस संवत्सररूप सूर्य्यके अवयवीभावका करताहोताहै एतदर्थ द्वादशमासमय षट्ऋतुरूप इसके अवयवभावमें करताहै ताते इसकों द्वादशाकृति कहतेहैं। अरु-। "परे अर्द्धे पुरीषिणम्"। (पर ऊंचे स्थानविषे जलवालाहै) आकाशरूप अन्तरिक्षलोकसे पर अरु ऊंचेस्थान तीसरे स्वर्गविषे स्थितहै ताते इसकों परे अर्द्धे करके कहाहै। अरु जलवालाहै। अर्थात् ["आदित्याज्जायते वृष्टिः"]

॥अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं ॥
॥सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति॥११॥

इस स्मृतिके प्रमाणसे । अरु सूर्य जब बहुत तपताहै तब जलकों वर्षताहै यह प्रसिद्ध प्रत्यक्ष प्रमाणहै ताते सूर्य्य जलवालाहै ऐसे कालकेवेत्ता कहतेहैं । अरु । "अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं" अरु यह अन्यतो तिस निपुण (सर्वज्ञ) कों । "सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति" । सात चक्रविषे अर्पितहै ऐसा कहतेहैं; अर्थात् सात अश्वरूप अथवा {सप्त ग्रहरूप अपूव (क्यों कि सूर्यकेसाथ भ्रमणकरनेवाले होनेसे)} अरु षट् ऋतुवाले द्वादशमास इस निरन्तर गतिवाले कालरूप चक्रविषे जैसे रथकी नाभिविषे अरा अर्पितहोतेहैं तैसे यह सर्व जगत् अर्पितहै ऐसा कहतेहैं ॥ हे सौम्य जब संवत्सररूपसूर्य प्रथम पक्षविषे पांच पाद अरु द्वादश आकृतिवालाहै अरु जब दूसरे पक्षविषे सप्त अपूवरूप अरु षट्ऋतुवाला ऐसा कहाहै [तहां यह भावहै कि प्रथम पक्षविषे ऋतुओंके पादपनेकी कल्पनासे अरु द्वादशमासोंके अवयवपनेकी कल्पनासे सूर्य्यरूपकरके संवत्सररूप कालात्मा ही कहा । अरु दूसरे पक्षविषे हेमन्त अरु शिशिर इन दोनो ऋतुकों (कि जिनकों पंच

॥मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष
॥एव रयिश्शुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः
॥शुक्ल इष्टिं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन्।१२॥

पादनके वर्णनमें एकरूप कहाहै) भिन्नकरके षट् ऋतुओंकों रथचक्रगत अनेक वक्रकाष्ठरूप अरेपनेकी कल्पनासे संवत्सरकों चक्रवत् भ्रमणरूप गुणके योगसे चक्रपनेकी कल्पना करके अरु कालके मुख्यभावसे सर्वका आश्रय होनेकरके भी सोई संवत्सररूप काल ही कहाहै । ताते इन कहेहुए दोनोमंत्रमें जो भेदहै सो भी गुणोंके अरु कल्पनाके भेदसे भेदहै कुछ काल रूप धर्मीका भेदनहीं] एतदर्थ सर्वप्रकारसे संवत्सरमय कालरूप अरु चन्द्र सूर्य्यरूप हुआ भी प्रजापति ही जगत्का कारणहै॥११॥

१२॥ हे सौम्य जिस संवत्सरविषे यह विप्रव स्थितहै । अर्थात् [संवत्सरकों भी मास अरु दिन रात्ररूप अवयवोंवालाहुए विना ओषधी आदिकोंकी जनकताका अभावहै अरु पूर्व इसकों पिता करके कहाहै ताते अब उस संवत्सरकी मास आदिक रूपताकों कहतेहैं]-सोई अर्थात् जो मासादि अवयवोंवाला ओषधीकापिता

संवत्सरनामवाला प्रजापति अपने अवयवरूप मासोंविषे समस्त पूर्ण होताहै। ताते–। "मासो वै प्रजापतिः"। ' मास ही प्रजापतिहै '–मासजो है सो अन्न अरु अन्नका भोक्ता इन उभयरूपवाला, संवत्सररूपवाला, प्रजापति ही है। "तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः"। ' तिसका कृष्णपक्ष ही अन्न है '–अर्थात् भोग्य भोक्ता उभयरूपवाला जो मासहै तिस मासरूप प्रजापतिका एकभाग जो कृष्णपक्षहै सोई अन्नरूप चन्द्रमाहै। अरु–। "शुक्लः प्राणः"। ' शुक्लपक्ष प्राणहै ' अर्थात् कृष्णपक्षसे इतर दूसराभाग जो शुक्लपक्षहै सो प्राण अरु अग्निमय भोक्ता सूर्य्यहै। "तस्मात् एते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्वन्ति"। ' ताते यह ऋषिलोग यज्ञकों शुक्लपक्षविषे करतेहैं ' एतदर्थ–जिसकरके शुक्लपक्षरूप प्राणकों सूर्य्यरूपही देखतेहैं अरु जिसकरके शुक्लपक्षरूप प्राणसे भिन्न जो कृष्णपक्षरूप अन्नहै तिसकों वे नहीं देखते। ताते ऐसे देखनेवाले जे ऋषिलोगहैं सो अपने इष्ट यज्ञकों कृष्णपक्षविषे करते हुए भी शुक्लपक्षविषे ही करतेहैं। अरु–। "इतर इतरस्मिन् १२"। ' इतर इतरविषे करतेहैं ' –प्राणके दृष्टासे जे अन्य ऋषिलोगहैं सो तो शुक्लपक्षकों सर्वात्मा प्राणरूप देखते नहीं किंतु

।।अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव।।
।।प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्र॰।।
।।स्कन्दन्ति ।।

प्राणरूपसे नदेखनेरूप कृष्णपक्षके भावकों॥ प्राप्तभये शुक्लपक्षकों ही देखतेहैं वे ऋषि अपने इष्ट यज्ञकों शुक्लपक्षविषे करतेहुए भी॥ तिससे अन्य कृष्णपक्षविषे ही करतेहैं ॥ १२ ॥

१३॥ हे सौम्य बारहवें मन्त्रसे कहा जो मासरूप प्रजापति सो भी अपने अवयवरूप दिन॥ अरु रात्रिविषे ही पूर्णहोताहै एतदर्थ सो। "अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयि"। (दिनरात्रि निश्चय प्रजापतिहै तिसका दिवस ही प्राणहै (अरु) रात्रि ही अन्नहै) अर्थात् दिनरात्रिरूप जो एक प्रजापतिहै तिसका भी दिवसहै॥ सोई प्राण अरु अग्निरूप अन्नका भोक्ता सूर्य्यहै अरु रात्रि जो है सोई अन्नरूप भोग्य चन्द्रमाहै। अरु०। "प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या॥ संयुज्यन्ते"। (जो दिवसमें मैथुनकों करतेहैं सो दिवसरूप प्राणकों खोवतेहैं) जो पुरुष अपनी अविवेकताके वशभये दिवसमें प्रीतिकी कारण॥ स्त्री तिसके साथ मैथुनकर्मकों करतेहैं सो पुरुष॥

॥ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्य्य-
॥मेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते॥ १३॥

दिवसरूप प्राणको खोवतेहैं। हे सौम्य जब यह
ऐसेहै तब दिनमें मैथुनकर्म करने योग्य नहीं।
इसप्रकार जो दिवसमें मैथुनका निषेधकहाहै सो
प्रासंगिक कहाहै। ग्रंथ॥ ब्रह्मचर्य्यमेव तद्यद्रात्रौ
रत्या संयुज्यन्ते"। ट जो रात्रिविषे मैथुनको करतेहैं
सो ब्रह्मचर्य ही है। जो विवेकी पुरुषहैं सो ऋतु-
कालमें भी रात्रिके समय ही अपनी स्त्रीके साथ
मैथूनकर्मको करते हैं सो उनका ब्रह्मचर्य ही है।
सो श्रेष्ठ है तातें ऋतुकालमें रात्रिविषे ही स्त्रीसे
संयोगकरने योग्यहै ॥ हे सौम्य यह ऋतुगमनकी
विधि जो कही है सो भी प्रासंगिक ही कहीहै।
अब जो प्रसंग पूर्वसे चलाहै तिसको श्रवणकरो।
यह जो दिवस रात्रिरूप प्रजापति कहाहै सो व्रीहि
(धान्य) यवादि अन्नरूपसे स्थित भयाहै॥ १३॥

१४॥ हे सौम्य इस कहेप्रकार क्रमकरके दिन-
रात्रिरूप प्रजापति अन्नविषे परिसमाप्तहोना है
तदर्थ। "अन्नं वै प्रजापतिः"। ट अन्न भी प्रजाप-
तिहै॥ प्र०॥ हे भगवन् तिस अन्नको प्रजोत्पदनप-
ना कैसे है ॥ उ०॥ । "ततो ह वै तद्रेतः"। ट तातें

॥अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतः॥
॥तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥१४॥

प्रसिद्ध ही रेत होताहै ; अर्थात् भोजनकिया जो अन्नहै तिस अन्नसे सर्वलोकविख्यात मनुष्यका बीजरूप रेत (वीर्य) होताहै-[यहां पुरुषके वीर्यका वाची रेत शब्दहै सो स्त्रीके रजरूप शोणितके भी ग्रहणार्थमें है । क्यों कि वीर्यरूपताकरके दोनोंकी तुल्यत्वहै ताते] सो प्रजाका कारणहै-। "तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति" । तिससे यह प्रजा उत्पन्नहोतीहै ; -अर्थात् तिस अन्नके परिणाम रेतसे यह मनुष्यादि प्रजा भली प्रकारसे उत्पन्न होतीहै ॥ १४ ॥ हे सौम्य हे कबन्धीन् तैंने जो प्रश्नकियाथा कि "कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त" किससे यह प्रजा उत्पन्नहोतीहै ; सो उक्तप्रकार दिनरात्रिपर्यन्त चंद्रसूर्य्यरूप दोनो आदिकके क्रमसे अन्नरूप रेतद्वारा सर्व प्रजा उपजैहै ऐसा श्रुतिने निर्णय कियाहै ॥ १४ ॥

१५॥ हे सौम्य जब श्रुतिके सिद्धान्तसे उक्तप्रकारहै तब । "तद्येह तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति" जो प्रसिद्ध तिस प्रजापतिके व्रतकों करताहै ; । अर्थात् श्रुति सिद्धान्तप्रमाण जो प्रसिद्ध गृहस्थहै

॥ तद्ये ह तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ॥
॥ते मिथुनमुत्पादयन्ते । तेषामेवैष ब्रह्म-॥
॥लोको येषां तपो ब्रह्मचर्य्यं येषु सत्यं॥
॥प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

सो तिस ऋतुकालविषे कि, श्रुतिशास्त्राचार्येनि नियम कियाहै, स्त्रीसहगमनरूप प्रजापतिनामक व्रत तिसकों करतेहैं ।। "ते मिथुनमुत्पादयन्ते"। 'सो सोकों उपजावते हैं ।' अर्थात् जो पुरुष उक्तलक्षणवाले प्रजापतिके व्रतकों करतेहैं सो पुत्र अरु पुत्रीरूप जोड़ेकों उपजावतेहैं । यह उनकों दृष्ट फलहै । अरु चन्द्रमंडलरूप ब्रह्मलोक उनकों अदृष्ट फलहै ॥ प्र० ॥ हे भगवन् जब केवल ऋतुकालमें भार्यागमनरूप प्रजापतिव्रतके आचरणमात्रसे ही चन्द्रमंडलरूप अदृष्ट फलकी प्राप्तिहोतीहै तब इसव्रतवाले जो मूर्ख पुरुषहैं कि जो तपादिक नहीं जानते तिनकों भी उक्त फलकी प्राप्तिहोगी ॥ उ० ॥ हे सौम्य तपादि साधन रहित केवल यथाविधि ऋतकालमें भार्यागमन मात्र प्रजापतिव्रतके करनेसे चन्द्रलोकरूप ब्रह्मलोककी प्राप्ति नहीं किन्तु । "तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्य्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्"। 'जिनकों तप ब्रह्मचर्य्यहै अरु जिनविषे सत्य

॥तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न ॥
॥येषु जिह्ममनृतं न मायाचेति ॥ १६॥
॥इति प्रश्नोपनिषद्गत प्रथम प्रश्नः१॥

वर्त्तताहै तिनकों ही यह ब्रह्मलोकहै। अर्थात् ॥
जिनपुरुषोंको कृच्छादि तप, बारहवर्षतक पढेहुए
वेदकी समाप्तिरूप स्नातक व्रतादि, अरु ऋतुका
लविषे अरु अन्यकालविषे मैथुनका असमान ॥
आचरणरूप ब्रह्मचर्यहै। अरु जिनविषे मिथ्या
भाषणका त्यागरूप सत्य अव्यभिचारतासे वर्त्त-
ताहै। अर्थात् जो गृहस्थ पुरुष यथासमय कृ-
च्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तपकों करतेहैं अरु पर
स्त्री गमनके त्यागपूर्वक केवल ऋतुकालमें ही
स्वभार्यागमनरूप ब्रह्मचर्यकों करतेहैं अरु जि-
नविषे असत्य भाषणका त्यागरूप सत्य निरन्तर
वर्त्तताहै। ऐसे जे इष्टापूर्तादि धर्माचरणपूर्वक प्र-
जापतिव्रतरूप दक्षिणायन मार्गके चलनेवाले ॥
पुरुषहै तिन हीकों यह चन्द्रमंडलविषे पितृयान-
रूप ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप अदृष्ट फलहै ॥ १५ ॥

१६॥ हे सौम्य अब और श्रवणकरो जो प्रसि-
द्धहै अर्थात् चन्द्रमाके ब्रह्मलोकवत् मलसहित ॥
अरु वृद्धिक्षयादिक दोषकरके युक्त नहीं अरु ॥

सूर्यकरके उपलक्षित उत्तरायणरूप प्राणका आ-
त्मभाव, अर्थात् सो सर्वका भोक्ता प्रजापति प्रा-
णमैंहीं ऐसाभावहै यह जिनकाहै ॥ प्र० ॥ हे भ-
गवन् यह किनकाहै ॥ उ० ॥ हे सौम्य । "न येषु
जिह्ममनृतं न माया च"। (जिनविषे कुटिलभाव अ-
अरु असत्य नहीं पुनः माया नहीं) अर्थात् जैसे
गृहस्थ पुरुषोंकों अनेक विरुद्ध व्यवहारिक प्रयो-
जनवाला होनेसे कुटिलभाव अवश्यहोताहै तैसे
जिन पुरुषोंविषे कुटिलभाव नहीं । अरु जैसे गृह-
स्थपुरुषकों क्रिडा (रमण) हास्यादि व्यवहारके
समय असत्यभाषण निषेधकरने योग्य नहीं । त
तैसे जिन पुरुषोंविषे क्रिडाआदिक व्यवहारके अ-
भावसे सो तन्निमित्तक असत्य भी नहीं अरु जिन
पुरुषोंविषे गृहस्थोवत् माया अर्थात् कपट अथ-
वा असत्यादि दोषोंवत् अन्य दोष नहीं । हे सौ-
म्य इसप्रकार जिन ब्रह्मचारी वानप्रस्थ अरु सं-
न्यासीरूप (यहां संन्यासी पदकरके परमहंसोंसे
इतर जे कुटीचक बहूदकादिहैं तिन्होंका ग्रहणहै (
क्योंकि उन परमहंसोंकों ब्रह्मलोकसे भी अपरोक्ष ..
वैराग्यहै ताते] ~ अधिकारियों विषे क्रिडादि नि-
मित्तोंके अभावसे असत्यादि दोष नहीं ~ । "तेषा-
मसौ विरजो ब्रह्मलोको"। (तिनका यह निर्मल
ब्रह्मलोकहै) ~ अर्थात् जिन पुरुषोंमें क्रिडादि

निमित्तके अभावसे असत्यादि दोषोंका भी अभाव है तिन पुरुषोंका निर्मल साधनोंके अनुसार यह रजतमादि दोषरहित निर्मल ब्रह्मलोकहै। "इति"। ऐसीयह प्राणादिकोंकी उपासना सहित इष्टापूर्तादिकर्म करनेवाले की उत्तरायणरूप गतिहै। अरु पूर्व कहा जो चन्द्रलोकरूपी ब्रह्मलोककी प्राप्ति सो केवल कर्मके करनेवाले जनोकी दक्षिणायन गतिहै ॥ १६ ॥

॥इति प्रश्नोपनिषद्गत प्रथम प्रश्नः॥
॥ भाषा टीका ॥
॥समाप्ता ॥
॥ हरिः॥
॥ ॐ॥
॥तत् सत् ब्रह्म॥
॥१॥

॥अथ प्रश्नोपनिषद्गत द्वितीय प्रश्नः॥

॥ॐ अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्र-॥
॥च्छ भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधार-॥
॥यन्ते कतर एतत् प्रकाशयन्ते कः पुन-॥
॥रेषां वरिष्ठ इति ॥ १ ॥ १७ ॥

॥अथ प्रश्नोपनिषद्गत द्वितीय प्रश्न॥
॥भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

॥ हे सौम्य [अब यहांसे अन्य द्वितीय अरु तृतीय इन दो प्रश्नोंका कहेहुये प्रथमप्रश्नसे जो सम्बन्धहै सो कहतेहैं । प्रथम प्रश्नविषे प्राणकों भोक्ता अरु प्रजापति कहाहै तहां प्राणकों जे श्रेष्ठपना भोक्तापना प्रजापतित्वपना कहाहै तिनआदिगुणोंके निर्धारणार्थ यह द्वितीय प्रश्नहै क्यों कि ! "अत्ता विश्वस्य सत्पतिः" ! ‘ भोक्ता जो है सो विश्वका श्रेष्ठ पतिहै ’ ऐसा ॥ इस द्वितीय प्रश्नके ११में वाक्यसे कहाहै, अरु ! "एषोऽग्निस्तपति" ! ‘ यह अग्निरूपहुआ तपताहै ’ यह इस द्वितीय प्रश्नके पांचवें वाक्यसे ॥ आरंभकरिके ! "अराइव रथनाभौ प्राणे सर्व्वं प्रतिष्ठितं" ! ‘ रथकी नाभिविषे अराओंवत् प्राणविषेसर्व यह स्थितहै ’ इस षष्टवाक्यसे अरु ॥ ! "प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे" ! प्र-

जापतिरूप नंहीं गर्भविषे विचरताहै अरु माता पिताके तुल्यहुआ जन्मताहै ' इस सप्तमवाक्यसे प्राणको प्रजापति आदि प्रतिपादन कियाहै ताते प्राणका प्रजापतिलपना अरु अन्नका भोक्तापना निश्चयकरने योग्य ही है । अरु यह प्रजापतिपनेका अरु भोक्तापनेका जो कथनहै सो प्राणके अन्य गुणोंका उपलक्षणहै । यहां यह भावहै कि प्रथम प्रश्नविषे कहीगई जो कर्म उपासनाकी गति तिसके श्रवणसे वैराग्ययुक्त भये पुरुषकों भी चित्तकी एकाग्रता (वृत्तियोंका निरोध) भये विना आगे आत्मतत्त्वके श्रवणकी असिद्धताहै ताते उनपुरुषोंके अर्थ प्राणकी उपासनाके लिये अब द्वितीय अरु तृतीय इन दोनों प्रश्नोंका आरंभहै । तिनमें भी प्राणके ज्येष्ठश्रेष्ठत्वपने अरु भोक्तापनेके अरु प्रजापति आदि गुणोंके निर्णयार्थ द्वितीयप्रश्नहै। अरु तिस प्राणकी उत्पत्त्यादिकोंके निर्णयपूर्वक तिसकी उपासनाके विधानार्थ तृतीयप्रश्नहै यह भी जानना] ॥

१ ॥ हे सौम्य प्रथम प्रश्नविषे "प्राणोऽन्ना प्रजापतिः" ऐसा कहाहै । ताते अब उस प्राणका भोक्तापना अरु प्रजापतिपना यह दोनो इस ही शरीरविषे निश्चयकरनेकों योग्यहै इस अर्थके

जतावनेके अर्थ इस द्वितीय प्रश्नका आरंभकर
तेहैं। "अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ"। ' अ-
नन्तर इसको निश्चयकरके विदर्भदेशका निवा-
सी भार्गव प्रसिद्ध पूछताभया ' अर्थात् कबंधी
मुनिके प्रश्न समाप्तहोनेके पश्चात् इस सर्वज्ञ।
पिप्पलादमुनिको उनकेवाक्यमें निश्चय पूर्वक।
विदर्भदेशका निवासी भार्गवनामवालामुनि सर्व
में प्रसिद्ध जो प्राण तिसविषयक प्रश्नकरताभया
कि। "भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते"।
' हे भगवन् कितने ही देवता प्रजाको विशेष-
करके धारणकरेहैं ' अर्थात् हे भगवन् आ-
काशादि पांच भूत अरु चक्षुरादि पांच ज्ञानेंद्रि-
यां अरु वागादि पांच कर्मेन्द्रियां अरु मन अ-
रु प्राण यह सप्तदशतत्वात्मक लिंगाभिमानि प्र-
त्येकतत्वके मिलके षोडशदेवताहैं तिनविषे।
कितने देवता इन शरीररूप प्रजाको-[यहां प्रजा
शब्दकाअर्थ शरीरही ग्रहणाकरने योग्यहै जीव।
नहीं क्यों कि जीवको प्राणधारित्वपनाहै एतद-
र्थ प्राण इन्द्रियाकरके जीव धारणकरनेयोग्य।
नहीं तातें यहां प्राणकरके धारणकरनेयोग्य
शरीररूप प्रजाहीहै] - धारतेहैं। अरु "कतर
एतत् प्रकाशयन्ते"। ' कितने इसको प्रकाशक-
रतेहैं ' - अर्थात् ज्ञानेंद्रिय अरु कर्मेंद्रियकरके।

॥तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष॥
॥देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः॥
॥श्रोत्रञ्च । ते प्रकाश्याभिवदन्ति ॥
॥वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयाम ॥२।१८॥

पृथक् २ भावकों प्राप्तभये जे देवता तिनके मध्य कौनसे देवता इस अपने माहात्म्यके प्रकटकारनेरूप प्रकाशकों करते हैं अर्थात् ["पाकं पचतीति"। पाककों पचताहे; तद्वत् अवकाशके देने आदिक अरु अवलोकनआदिक जो आकाशादि भूतोंका अरु इन्द्रियरूप देवताओंका जो अपना अपना माहात्म्यहे तिसकों लोकोंविषे प्रकटकारनेरूप प्रकाशकों कौनसे देवता करते है] अरु "कः पुनरेषां वरिष्ठ इति"। पुनः इनके मध्य श्रेष्ठ कौनहै; फेर इन कार्य कारणरूप पूर्वोक्त सप्तदश देवताओंकेमध्य अतिशय कीर्तिवाला अरु श्रेष्ठ देव कौन है ॥ १ ॥ १७ ॥

२॥ हे सौम्य उक्तप्रकार जब पिप्पलादमुनिसे प्रश्नकिया तब । "तस्मै स होवाच"। तिसकों सो स्पष्ट कहतेभये; अर्थात् तिस प्रश्नकर्त्ता भार्गवमुनिके अर्थ सो पिप्पलादनामामुनिश्वर आचार्य प्रसिद्ध कहते भये कि हे भार्गव। "आ-

काशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ् मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च"। "आकाश प्रसिद्ध यह देवहै वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाक्, मन, चक्षु, श्रोत्र, (यह देव है)" अर्थात् आकाश प्रसिद्ध यह देवहै [यहां यह देव ऐसाजो कहाहै सो आगेकहनेके कथन आदि व्यवहारकी सिद्ध्यर्थ अरु चेतनपनेकी (यह चेतनहै) इस) संभावनाकेअर्थ यहां "देव" विशेषणहै । अरु, देव, इस पदसे जो अभिमानी का कथनहै सोतो आकाशादिकोंके अभिमानी देवताओंके ग्रहणार्थहै अन्य देवताओंके ग्रहणार्थ नहीं । ताते यहां "देव" इस विशेषणका वायुआदिकोंसे भी सम्बन्धहै] वायु देवहै, अग्नि देवहै, जल देवहै, पृथिवी देवहै, वाणी उपलक्षणकरके पांच कर्मेंद्रिया देवहैं, मन उपलक्षणकरके वृत्तिचतुष्टयात्मक अन्तःकरण देवहै, चक्षु अरु श्रोत्र इनउपलक्षणकरके पांच ज्ञानेन्द्रिया यह देवहैं,। अर्थात् शरीरको आरंभकरनेवाले आकाशादि पांच भूत अरु वाणी अरु मन अरु चक्षु अरु श्रोत्र इत्यादि सर्व ज्ञानेन्द्रियां अरु कर्मेंद्रियां अरु अन्तः करणरूप, देव, शरीरको धारण करतेहैं, तिन देवताओंके मध्य पांचकर्मेंद्रिया अरु पांचज्ञानेन्द्रियारूप जो देवहैं सो अपने माहात्म्यको प्रकटकरनेरूप (दर्शनश्रवणादि

रूप) कार्यको करतेहैं । अरु कार्यरूपदेव अरु
करणरूपदेव अर्थात [देहाकारसे परिणामकोंप्रा-
प्तभये जे आकाशादि पंच महाभूत सो कार्यरूप
देवताहैं अरु ज्ञानेन्द्रियां अरु कर्मेंद्रियां यह
करणरूप देवहै] । "ते प्रकाश्याभिवदन्ति"।
ः सो देव प्रकाशकरके कहतेभये ; अर्थात् सो
देव अपने माहात्म्यकों प्रकाशकरिके अपनेविषे
श्रेष्ठत्वका अभिमानकरके परस्पर ईर्षाकोंकरते
हुए कहतेभये ॥ प्र॰ ॥ क्या कहते भये ॥ उ॰ ॥
।"वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः"। ःहम
इस शरीरकों अशिथिलकरके स्पष्ट धारतेहैं ;
(ऐसे कहते भये) अर्थात् जैसे प्रासाद (बडेऊं-
चेग्रह) कों स्थंभ धारतेहैं तैसे हम् इस कार्य
कारणात्मक संघातरूप शरीरकों शिथिलकिये
विना.ही स्पष्ट धारतेहैं, इसप्रकार अपने२ विषे
महत्वपनेका अभिमानकरके इन्द्रियरूप देवता
परस्पर कहते भये ॥ २ ॥ २८ ॥ . हे सौम्य
इन्द्रियोंका परस्पर अरु प्राणका जो संवाद अ-
रु प्राणकों सर्वमें ज्येष्ठ श्रेष्ठपना यह छांदोग्य
उपनिषद्के चतुर्थ प्रपाठकमें एक आख्यायिका
रूपसे स विस्तर कहाहे ॥

३ ॥ हे सौम्य उक्तप्रकार साभिमानहूये अ-

॥तान् वरिष्ठः प्राण उवाच।मा॥
॥मोहमापद्यथाऽहमेवैतत् पञ्चधाऽऽ-॥
॥त्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य वि-॥
॥धारयामीति॥ ३॥ २९॥

पने २ श्रेष्ठत्वके अर्थ ईर्षापूर्वक परस्परमें विवादकरते जे देवता। "तान् वरिष्ठः प्राण उवाच"। ःतिनकों मुख्य प्राण कहताभया ;। अर्थात् तिन असत्य अभिमानकरनेवाले इंद्रियारूप देवोंकों सर्वमें मुख्यदेव जो प्राण सो कहताभया कि—। "मा मोहमापद्यथा"। ःमोहकों मत प्राप्तहो ;—अविवेकताके वशभये इस असत्य अभिमानकों मतकरो। देखो—। "अहमेवैतत् पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्य"। ःमैं ही इस अपनेआपकों पांचप्रकारसे विभागकरके ;—मैं ही इस अपने आपकों, अपानादि भेदसे पांचप्रकारहोयके—। "एतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति"। ःइस शरीरकों अशिथिलकरके स्पष्ट धारताहो ;—इस कार्य कारणात्मक संघातरूप शरीरकों शिथिल न करके स्पष्ट धारताहो। तातें तुम व्यर्थ अभिमान मतकरो॥ ३॥ २९॥

४ ॥हे सौम्य उक्तप्रकार जब प्राणने सर्व॥

॥तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमा-॥
॥नादूर्द्धमुत्क्रामत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथे॥
॥तरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रति॥
॥ष्ठमाने सर्व्व एव प्रतिष्ठन्ते तद्यथा मक्षि॥
॥का मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्व्वाएवो-
॥त्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्वा॥
॥एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रो॰॥
॥त्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ॥४॥१०॥

इन्द्रियोंसे कहा तब। "ते अश्रद्दधाना बभूवुः" ‹वे अश्रद्धावान् होतेभये› अर्थात् सो इन्द्रियरूप देवता विचारकरतेभये कि जो यह प्राण कहताहै कि मैं पांचप्रकारहोयके इस शरीरको धारताहौ सो असंभवहै। इसप्रकार प्राणके वाक्यमें अविश्वासवानहोतेभये तब—।" सोऽभिमानादूर्द्धमुत्क्रामत इव"। ‹सो अभिमानसे ऊंचे गमनकरतेहुए वत् अर्थात्सो प्राण तिन इन्द्रियरूप देवतोंके अपनेवाक्यमें अविश्वासको देख आप अभिमानसे उंचेको जातेहुएवत् होताभया। अर्थात् रोष (क्रोध) सहित इन्द्रियोंकी अपेक्षा से रहित हुआ इस संघातरूप शरीरको त्यागता भया। हे सौम्य उक्तप्रकार इस शरीरसे प्राणके। निकसजानेसे जो वृत्तान्तहुआ तिसको अब वेद

दृष्टान्तसे स्पष्ट करेहै । "तस्मिन्नुत्क्रामस्यथेतरे सर्व्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्व एव प्रातिष्ठन्ते"। तिसके निकसनेसे पीछे अन्य सर्व ही जातेभये पुनः तिसके स्थितहुए सर्व ही स्थितहोतेभये ; अर्थात् तिस प्राणके शरीरसे निकसने पीछे और सर्व चक्षुरादि इंद्रिया भी जातेभये अरु पुनः तिस प्राणके तूष्णीं (चुप) होके बैठने से सर्व ही तूष्णींहोके बैठते भये ॥ दृष्टान्त। "यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्व्वा एवोत्क्रामन्ते"। जैसे मक्षिका मधुकरराजाके निकसि जानेसे सर्व ही निकल जातेहैं ; अर्थात् जैसे मधु (सहत) की मखूवी अपने राजा मखूवीके निकल जानेसे सर्व ही उस स्थानको त्यागके निकलजातीहैं । अरु । "तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्वा एव प्रातिष्ठन्त"। तिसके स्थितहुये सर्व ही स्थित होतेहैं ; अर्थात् तिस मधुकरराजा मखूवीके स्थितहुए अन्य सर्व मखूवी स्थितहोतीहैं । हे सौम्य जैसे यह उक्त दृष्टान्तहै । "एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ४"। ऐसे वाणी (कर्मेंद्रियां) मन, चक्षु अरु श्रोत्र, (ज्ञानेन्द्रिया) सो प्रीतिसे प्राणकी स्तुति करते भये ; अर्थात् उक्त दृष्टान्तप्रमाण वाणी मन चक्षु आदि सर्व इन्द्रियांरूप देव प्राणके माहात्म्यको जान तिसलिये प्रतीतवान्

॥एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष प॥
॥र्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी । रं॥
॥यिर्देवः सदसच्चामृतञ्चयत्॥५॥२१॥

होय अपने असत्यमहत्वके अभिमानको त्याग प्रसन्नतापूर्वक प्राणकी स्तुति करतेभये॥४॥

५ ॥हे सौम्य इन्द्रियां कहतीहैं कि । "एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष पर्जन्यो"। ' यह अग्नि हुआ तपताहै यह सूर्य्यहै यह मेघहै ' अर्थात् यह प्राण अग्निरूपहुआ तपताहै, तैसे यह सूर्य्यरूपहुआ प्रकाशताहै, तैसे यह मेघरूपहुआ वर्षाकरताहै । अरु । "मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतंचयत्"। ' यह इन्द्र है,यह वायुहै, यह पृथिवीहै,यह चन्द्रदेवहै, सत्,असत्, अरु अमृतजो है,(सो सर्व प्राणही है) ' यह इन्द्रहोयके प्रजाका पालनकरताहै, अरु असुर राक्षसोंका नाश करताहै, अरु यह आवह (उड़ायके लेजानेवाला) अरु प्रवाह (वेगसे चलनेवाला) आदिक सात गुणोंके भेदसे भेदवाला हुआ वायु मेघ अरु नक्षत्रादिकोंको भ्रमावताहै, अरु यह पृथिवीरूपहोके सर्वको धारताहै । अरु यह देव चन्द्रमाहोयके औषधि

॥ अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं ॥
॥प्रतिष्ठितम् । ऋचो यजूंषि सामानि ॥
॥यज्ञः क्षत्रं ब्रह्मच ॥ ६ ॥ २२ ॥

आदिकोंका पोषणकरताहै । हे सौम्य विशेष क्याकहिये सत् कहिये सूक्ष्म अमूर्त अरु अ-सत् कहिये स्थूल मूर्त अरु देवताओंकी स्थितिका कारणभूत जे अमृतहै सोभी प्राणहीहै॥५

६ ॥ हे सौम्य पुनः इन्द्रियारूप देवता विचारकरते भये कि । "अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्"। 'रथकी नाभिविषे अरान्वत् प्राणविषे सर्व स्थितहै ' अर्थात् जैसे रथके चक्र (पहिया) के मध्यकाष्ठको रथनाभि कहतेहैं। तिसविषे अरा (खडीलकडीयां) स्थित होतेहैं। तैसे इस उपनिषद्के षष्ठ प्रश्नके "प्राणाच्छ्रद्धा खं वायुर्ज्योतिः" इत्यादि। 'प्राणसे श्रद्धा । आकाश वायु तेज ' इत्यादिकोंको सृजताभया इस चतुर्थवाक्य प्रमाण श्रद्धा आदिसे नामपर्यंत सर्वका संघातरूप शरीर अपनि स्थितिकालमें। प्राणविषे स्थितहैं । अरु तैसेही । "ऋचो यजूंसि सामानि यज्ञ क्षत्रं ब्रह्म च ६"। 'ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अरु यज्ञ क्षत्रिय अरु ब्रा-

॥प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रति-॥
॥जायसे तुभ्यं प्राण: प्रजास्त्विमा बलीं ॥
॥हरन्ति य: प्राणै प्रतितिष्ठसि ॥ ७ ॥ २३।

प्राण ; अर्थात् जैसे श्रद्धा आदिक कला प्राणवि-पे स्थित हैं, तैसे ऋग् यजु साम यह तीन वेदके तीनप्रकारके मन्त्र, अरु तिन मन्त्रों करके साधने योग्य अश्वमेधादि यज्ञ, अरु सर्वके पालनकर्ता अरु दंडके दाता क्षत्रिय जाति राजा, अरु यज्ञादिक वैदिक कर्मोंके कर्ताओंमें मुख्य अधिकारी सर्वोत्तम ब्राह्मणजाति, यह सर्व प्राणके आश्रय होनेसे प्राण ही हैं ॥ ६ ॥ २२ ॥

७ ॥ हे सौम्य दो मन्त्रसे कहेप्रकार विचारके सर्व इन्द्रियां प्राणकी स्तुति करतीभयी । "प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे"। जो प्रजापतिहै सो तूं ही है गर्भविषे विचरताहै अरु सदृश हुआ जन्मताहै ; अर्थात् कहतीभयी कि हे प्राण जो सर्वका प्रजापतिहै सो भि तूं हीहै, अरु पिताके गर्भमें वीर्यरूपसे अरु माताके गर्भविषे पुत्ररूपसे जो विचरताहै अरु जो मातापिताके ही सदृशहुआ जन्मताहै सो तूं ही जन्मताहै, अर्थात् हे प्राण तुझको सर्वरूप प्रजापतिहोनेसे तेरा मातापितापना

॥देवानामसि वन्हितमः पितॄणां प्रथ-॥
॥मा स्वधा । ऋषीणाञ्चरितं सत्यमथ-॥
॥र्व्वाङ्गिरसामसि ॥ ८ ॥ २४ ॥

प्रथम ही सिद्धहै, एतदर्थ तूं सर्व देह अरु सर्वदे-
हवालोंके आकारोंसे रवाहुआ एक प्राणरूप स-
र्वात्माहै । अरु-।"तुभ्यं प्राणः प्रजास्तिमा बलीं।
हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ७"। 'हे प्राण यह।
प्रजा तो तेरेअर्थ बलि देतेहैं जो प्राणोंकेसाथ सर्व
शरीरोंप्रति स्थितहै'-हे प्राण यह मनुष्यादि सर्व प्र-
जा सो चक्षुरादिद्वारा रूपादि विषयरूप बलिदान।
(कर) तेरे ही अर्थ देतेहैं, क्यों कि जो तूं चक्षुरा
दि इन्द्रियों साथ मिलके अरु उन सर्वकों अपने।
आश्रय धारकें सर्वका भोक्ताहुआ सर्व शरीरोंवि-
षे स्थितहै, एतदर्थ सर्व तेरे ही अर्थ बलिदान(कर)
देतेहैं। इति सिद्धम् ॥ ७ ॥ २३ ॥

८ ॥ हे सौम्य पुनः इन्द्रिया कहतीहैं कि हे प्रा-
ण ।"देवानामसि वन्हितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा"।
'देवताओंके मध्य वन्हितमहै पितरियोंकी प्रथम।
स्वधाहै' अर्थात् इन्द्रादि देवताओंके मध्य तूं,व-
न्हितम, कहिये अतिप्रायकरके हवनकिये द्रव्यकों
प्राप्तकरनेवालाहै। अरु पितरोंके नान्दीमुखश्राद्ध।

विषे (जो कि शुभकार्यमेंहोताहै) जो स्वधारूप अन्नहै सो देवताओंके निमित्त हवनद्रव्य देनेसे प्रथम होताहै एतदर्थ पितृयोंके अर्थ प्रथम जो स्वधा सो तूंहै। अर्थात् पितृयोंके अर्थ स्वधान्नका प्राप्तकरनेवाला तूं है। अरु। "ऋषिणाञ्चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि"। इन्द्रियोंका अंगिरसरूप अथर्वण नामवाले (भये) ऋषियों (इन्द्रियों) का चरित सत्य (तूं ही है।) अर्थात् चक्षुरादि इन्द्रियरूप अंगिरस। अथर्वण नामवाले हुए भी उन ऋषियोंका [अर्थात् «ऋष» जो धातुहै सो गति (ज्ञान) रूप अर्थविषे वर्त्तताहै। एतदर्थ ऋषिपदका ज्ञानके जनक चक्षुरादिक इन्द्रियरूप अर्थहै अरु इन्द्रियरूप प्राणके अभावहुए अंगोंकेरसका शोषणहोता देखनेसे उन इन्द्रियरूप प्राणों कों अङ्गिरसपनाहै। अरु "प्राणो वा अथर्वा इतिश्रुति"। प्राण वा अथर्वा है। इस श्रुतिके प्रमाणसें तिन इन्द्रियोंकों अथर्वापनाहै। यद्यपि मुख्यप्राणका अथर्वापना श्रुतिने कहाहै, तथापि चक्षुरादि इन्द्रियोंकों भी उस मुख्यप्राणके अंसरूप होनेसे अथर्वशब्दका अथर्वान् यह वहुत पनाहै, इति भावः] चरित अरु देह धारणादिक विषे उपकारकरनेरूप सत्य तूं ही है॥ ८॥ २५॥

रामः रामः रामः रामः रामः रामः रामः रामः रामः

॥ इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परि॥
॥रक्षिता । त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्य्यस्त्वं ॥
॥ज्योतिषाम्पतिः ॥ ९ ॥ २५ ॥

९ ॥ हे सौम्य पुनः इन्द्रियां कहती भयी कि ।"इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता"। ' हे प्राण इन्द्र तूं है, रुद्र तूं है, रक्षाकरनेवाला तूं है ; अर्थात् हे प्राण वीर्य (सामर्थ्य) करके । इन्द्र (परमेश्वर) तूंहै, अथवा {हे प्राण अपने सामर्थ्यकरके सर्व देवताओंका अधिपति इन्द्र तूं है} अरु संहारकरनेके सामर्थ्यसे जगत्का हरणकरनेवाला रुद्र तूं ही है, अरु स्थितिकाल विषे सौम्यरूपहुआ जगत्का पालक विष्णु भी तूं हीहै । अरु ।"त्वमन्तरिक्षेचरसि सूर्य्यस्त्वं । ज्योतिषाम्पतिः९"। ' तूं अन्तरिक्षविषे विचरता है (अरु) ज्योतियोंका पति सूर्य्य तूं ही है ; अन्तरिक्षादिआकाशविषे निरन्तर विचरनेवाला तूं ही है । अरु उदय अरु अस्त होनेवाले सर्व ज्योतिगणोंका अधिपति सूर्य्य तूं ही है। इति सिद्धम् ॥ ९ ॥ २५ ॥

१० ॥हे सौम्य पुनः इन्द्रियां कहती भयी कि । हे प्राण । "यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण

॥यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणं॥
॥ते प्रजाः आनन्दरूपातिष्ठन्ति कामाया-॥
॥न्नं भविष्यतीति॥ १० ॥ २६ ॥

ते प्रजाः"। 'जब तू वर्षताहै तब यह प्रजा प्राणकी (चेष्टाकरैहै)' अर्थात् जब तूं मेघहोयके वर्षाकरताहै तब अन्नकोंपायके यह प्रजा प्राणकी चेष्टाकों करैहै। अथवा। "यदा त्वमभि वर्षस्यथेमाः प्रजाः"। 'हे प्राण तेरी यह प्रजा तेरे अन्नसे वृद्धिकों पायिहुइ अरु तेरी वर्षाके देखने मात्रसे ही'। "आनन्दरूपा तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति १०"। 'आनन्दरूप स्थितहै यथेष्ट अन्नहोगा' आनन्दकों प्राप्त भयि स्थितहै, क्योंकि यथेष्ट (इच्छाके अनुसार) अन्नहोगा॥ ऐसा तिस वर्षाके देखनेवाली प्रजाका अभिप्राय है॥ इति सिद्धम्॥ १०॥ २६॥

११॥हे सौम्य पुनः इन्द्रियां कहतीभयी कि "व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः"। 'हे प्राण व्रात्य तूं है, एकर्षिरूप भोक्ता तू है'। अर्थात् हे प्राण! "एतस्माज्जायते प्राणः" तुरूकों प्रथम उत्पन्नहोनेसे तुरूसे पूर्व तेरा संस्कार करनेवाला अन्य कोई नहीं ताते तूं संस्काररहित

॥ व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता वि-॥
॥श्वस्य सत्पतिः । वयमाद्यस्य दातारः॥
॥पिता त्वं मातरिश्वनः ॥ ११ ॥ २७ ॥

व्रात्य (असंस्कारी) है अरु {जो ऐसाकहे कि जिससे प्राण उत्पन्नभयाहैं सोई उसका संस्कारकरनेवालाहै, सो बनेनहीं, क्योंकि जिस आत्मासे प्राण उत्पन्नभयाहै सो अक्रिय है} । अरु । "एकऋषिरत्ता" । 'एकर्षिहुआ भोक्ता तू है' अर्थात् एकर्षिनामवाला अग्निरूपहुआ सर्व हविषादिकोंका भोक्ता तू है । अरु । "विश्वस्य सत्पतिः" 'विश्वका सत्य पति तूहै' अर्थात् सम्पूर्ण जगत्का प्रत्यक्ष विद्यमान पति तूं है । अथवा विश्वका श्रेष्ठपति तूहै । अरु । "वयमाद्यस्यदातारः" 'हम् भक्षणके दाता है' अर्थात् हम् कर्मी उपासकलोक तेरे भक्षणके योग्य हविषा (हवनकरनेयोग्य वस्तु) के दाताहैं । अरु । "पिता त्वं मातरिश्वनः ११" । 'हे वायो तूं पिताहै' अर्थात् हे अन्तरिक्षमें चलनेवाले वायु (प्राण) तू हमारा पिताहै । अथवा तू वायुका पिताहै, एतदर्थ तुम् कों सर्व जगत्का पितत्व सिद्ध; क्यों कि तूं आकाशरूपहुआ वायुआदि अस्मदादिकोंका जनक है ताते ॥ ११ ॥ २७ ॥

॥या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे ॥
॥या चक्षुषि । या च मनसि सन्तता शिवां॥
॥ तां कुरुमोत्क्रमीः ॥ १२ ॥ २८ ॥

१२॥ हे सौम्य पुनः इन्द्रियां कहतीहैं कि विशेषकहनेकरके क्याहै। हे प्राण। "या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता"। (जो तेरी तनू वाणीविषे स्थितहै) अर्थात् जो तेरी [अपानरूप]मूर्त्ति वक्ता। (कहनेवाली) होनेसे वक्तृत्वरूप चेष्टा करतीहुई वाणीरूप स्थानविषे स्थितहै। अरु। "या श्रोत्रे या चक्षुषि"। (जो श्रोत्रविषे जो चक्षुविषे) जो तेरी [व्यानरूप] मूर्त्ति श्रोता होनेसे श्रवणरूप चेष्टाकों करतीहुई श्रोत्रविषे स्थितहै। अरु जो तेरी [प्राणरूप] मूर्त्ति द्रष्टाहोनेसे दर्शनरूपचेष्टाकों करती हुई चक्षुविषे स्थितहै। अरु। "या च मनसि सन्तता"। (पुनः जो मनविषे (स्थितहै) तिसकों प्रशान्तकर) फेरजो तेरी [समानरूप] मूर्त्ति मन्ताहोनेसे संकल्पादिव्यापारकों करतीहुई मनविषे स्थितहै तिसकों तूं प्रशान्तकर। अरु। "शिवां तां कुरुमोत्क्रमीः"। (निकसनेसे अमंगल मतिकरे) तूं अपने निकसजानेसे इनस्थानोकों अमंगल (निकम्मे) मतकर॥ ["स प्राणस्तच्चक्षुः स व्यानस्तच्छ्रोत्रं सोऽपानःसावाक् ससमानस्तन्मन इतिश्रुते"]॥१२॥२८

ऐश्वर्यरूपा क्षत्रियोंकी लक्ष्मी) यह दोनों लक्ष्मीयोंकरके, अरु तेरी स्थितिरूप निमित्तवाली अर्थात् जिस बुद्धिके होनेसे इस संघातरूप शरीर विषे तेरी स्थिति रहै ऐसी बुद्धिकों हमारे अर्थ दे ॥ हे सौम्य इस द्वितीयप्रश्नकरके निर्धारकिये प्राणके गुण संक्षेपमात्रसे प्रतिपादनकियेहैं इस रीतिसे सर्वरूपजो प्राणहै सो वाक् आदि इन्द्रियोंकरके स्तुतिकरनेद्वारा प्रकट भयी जो उसकी महिमां तिस महिमावालाहै अरु सोई प्रजापतिहै । इति निश्चितम् ॥ १३ ॥ २९ ॥

॥इति प्रश्नोपनिषद्गत द्वितीय प्रश्नः॥

भाषा टीका

समाप्ता

हरिः

ॐ

तत् सत् ब्रह्म

॥२॥

॥अथ प्रश्नोपनिषद्गत तृतीय प्रश्न॥

॥अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः
॥पप्रच्छ भगवन् कुत एष प्राणो जा-
॥यते कथमायात्यस्मिञ्छरीरे आत्मा-
॥नं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनो-
॥त्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथम-
॥ध्यात्ममिति ॥ १ ॥ ३० ॥

॥अथ प्रश्नोपनिषद्गत तृतीय प्रश्न भाषा-
टीका प्रारभ्यते॥३॥

॥हे सौम्य पूर्वोक्तप्रकार इन्द्रियोंकरके किहुई स्तुतिद्वारा प्राणका प्रजापतिपना अरु भोक्तापना आदिक गुणोंके समुदायका निर्धारकरिके, अब प्राणकी उत्पत्ति आदिकोंका निर्णय करतेहुए तिसकी उपासनाके विधानार्थ इस तृतीय प्रश्नका आरंभकरतेहैं ॥

१ ॥ हे सौम्य। "अथ हैनं कौसल्यश्चाश्व-लायनः पप्रच्छ"। ः तिसकेअनन्तर इसको अश्वलका पुत्र कौसल्य नामवालामुनि पूछताभया ; अर्थात् कबन्धीमुनि अरु भार्गवमुनिके दो प्रश्नोद्वारा प्राणके प्रजापतित्व आदिगुणोंके निर्धारहोनेके अनन्तर, इस पिप्पलादमुनिप्रवर रूप आचार्यको अश्वलमुनिका पुत्र कौसल्य

नामवालामुनि प्रश्नकरताभया कि । "भगवन् । कुत एष प्राणो जायते"। ' हे भगवन् यह प्राण किससे उपजताहै ; अर्थात् हे भगवन् हे सर्वज्ञ यह प्राण, कि जिसकी महिमा आपने दो प्रश्नो के उत्तरकरके निर्धारितकिया, सो किसकारण से उपजताहै । अरु— । "कथमायात्यस्मिञ्छरीरे"। ' कैसे इस शरीरविषे आवताहै ; अर्थात्— उपजाभया किसप्रकार इस शरीरविषे आवताहै, अर्थात् प्राणको शरीरधारणका निमित्त कौनहै । अरु— । "आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते"। ' अपने आपका विभागकरके कैसे स्थितहोताहै ; —एक अपनेआपको कईएक विभागकरके किसप्रकारसे स्थितहोताहै । अरु— । "केनोत्क्रमते"। ' किसकरके निकसताहै ; —किस वृत्तिविशेषकरके इस शरीरसे, निकसताहै । अरु— "कथं बाह्य मभिधत्ते"। ' बाह्यको कैसे धारताहै ; —बाह्यजो अधिभूत अरु अधिदैव तिसको कैसे धारताहै, अर्थात् [प्राणादि पांचवृत्तिभेद वालेप्राणका सूर्य अरु पृथिवीआदि पांचभूत अधिदैव अरु चक्षुरादि पांच इन्द्रियां अधिभूतरूप बाह्यहैं] तिसको यह प्राण कैसे धारताहै । अरु— । "कथमध्यात्ममिति"। ' अध्यात्मको कैसे धारताहै ; —अध्यात्मको किसप्रकार,

॥तस्मै स होवाचाति प्रश्नान् पृ-॥
॥च्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसि तस्मात्तेऽहं ब्र-॥
॥वीमीति ॥ २ ॥ ३१ ॥

धारणकरताहै [प्राणादिरूप अन्तरवर्त्ति जो प्राणकी पांचवृत्तियाहैं सो प्राणका अध्यात्मरूपहै यह आगेकहैंगे]॥ १ ॥ ३० ॥

२॥हे सौम्य उक्तप्रकार जब कौसल्यनामवाले मुनिने अपने आचार्यसे प्रश्नकिया तब "तस्मै स होवाच"। ‹ तिसकों सो स्पष्ट कहताभया › अर्थात् तिस प्रश्नकरता शिष्यकों सो सर्वज्ञ पिप्पलादनाम मुनीश्वर स्पष्ट कहताभया कि – । "अति प्रश्नान् पृच्छसि"। ‹ अति प्रश्नों कों पूछताहै › – हे प्रश्नकरताओंमें कुशल तूं अति श्रेष्ठ प्रश्नोंको करताहै, क्यों कि प्रथम तो प्राणही दुर्विज्ञेय (दुःखसे जानने योग्य) है एतदर्थ उसविषयक जैसे कठिन प्रश्नहोय तैसे ही करने योग्यहैं, एतदर्थ तूं अति प्रश्नोंको पूछताहै । अरु – । "ब्रह्मिष्ठोसीति"। ‹ ब्रह्मनिष्ठहै › – एतदर्थ ही तूं ब्रह्मवेत्ताहै – । "तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि २"। ‹ तातें मैं कहताहों › – एतदर्थ मैं तेरे ऊपर प्रसन्न भयाहों तिसकारणसे जो तैंने प्रश्न

॥आत्मनः एष प्राणो जायते य-॥
॥थैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं म-॥
॥नोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ॥ ३ ॥ ३२ ॥

किये हैं तिनका उत्तर मैं तेरे अर्थ कहताहौं तिस-
कों श्रवण कर ॥ २ ॥ ३१ ॥

३ ॥ पिप्पलादउवाच ॥ ।"आत्मनः एष प्रा-
णो जायते"। ' आत्मासे यह प्राण उपजताहै '
हे सौम्य, अब प्रश्नकरनेवाले कौसल्यनाममुनि
कों पिप्पलादमुनि कहतेभये कि हे कौसल्य ! "अ-
प्राणोह्यमनः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः। एतस्मा-
ज्जायते प्राणो"। जो प्राण मन आदि उपाधि रहित
सदा शुद्ध कार्य कारणसे परे अक्षर सत्य परमा-
त्मासे यह सर्वमें श्रेष्ठ प्राण उपजताहै ॥ प्र० ॥
कैसे उपजताहै ॥ उ० ॥ ।"यथैषा पुरुषे छायैत-
स्मिन्नेतदाततं"। ' जैसे पुरुषविषे छाया तैसे ति-
सविषे यह समर्पण कियाहै ' हे सौम्य जैसे म-
स्तक हस्त पादादि अवयवसमुच्चयरूप पुरुष नि-
मित्तसे नैमित्तिकी यह छाया उपजतीहै । तैसेही
तिस ब्रह्मरूप सत्य अक्षर पुरुषविषे यह प्राण-
नामवाला छायास्थानीय मिथ्यारूप वाला तत्व
समर्पितहै । अरु—। "मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे"

॥यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियु-॥
॥ङ्क्ते एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठ॥
॥ स्वेत्येवमेवैष प्राणः इतरान् प्राणान् ॥
॥ पृथक् पृथगेव सन्निधत्ते ॥४॥३३॥

३"। (मनकरके किये कर्म निमित्तसे इस शरीर विषे आवताहै)—देहविषे जो आवताहै सो अर्थात् मनके संकल्प इच्छादि वृत्तियोंकरके किये जे कर्म तिन कर्मरूप निमित्तसे इस शरीरविषे आवताहै। "पुण्येन पुण्यं लोकं नयति"। (पुण्यसे पुण्यलोकको लेजाताहै)। यह इस ही प्रश्नके सातवें वाक्यसे कहेंगे। अरु—"तदेव सक्तः सह कर्मणैति"। (आसक्तहुआ तिस ही कों सहितकर्मके पावताहै) अर्थात् यह कर्मकरनेवाले कर्मी पुरुषका मन जिस फलविषे आसक्तहोताहै तब तिस आसक्तताकरके वे पुरुष तिस हीकों कि जिस विषे आसक्तहैं, कर्मकरके पावतेहैं। इस बृहदारण्यके छठे अध्यायकी श्रुतिविषे शरीरोंका ग्रहण कर्मोंकरके ही साध्यहै ऐसा कहाहै ॥३।३२॥

४॥ हे सौम्य पिप्पलादमुनि कहताभयाकि हे कौसल्य अब दृष्टान्तपूर्वक श्रवणकरो। "यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुंक्ते"। (जैसे चक्रवर्ती

राजा निश्चयकरके अधिकारीओंको योजनाकरताहै; अर्थात् जैसे कोइएक चक्रवर्त्ती राजा। अपने राज्यके निबन्धमें कार्य्याध्यक्षताके योग्य। पुरुषों को निश्चयकरके तब उन अधिकारी पुरुषों कों देशविभागसे योजनाकरताहै अरु कहताहै कि—। "एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्व"। ं तुम एतने ग्रामके अरु तुम एतने ग्रामके अधिपतिहोयके स्थित होउ; —हे कार्य्याध्यताके। योग्य पुरुषो मेरी आज्ञासे तुम एतने ग्रामोंके। मंडल देशकें अरु तुम एतने ग्रामके मंडल देशके अधिपतिहोयके देशोंका रक्षण पालन सावधानीसे करते रहो ॥ हे सौम्य—। "इत्येवमेवैष प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेव सन्निधत्ते"। ं ऐसे ही यह प्राण इतर प्राणोंकों पृथक् पृथक् ही योजनाकरताहै; —इस कहेहुए दृष्टान्तके प्रमाण ही, यह जो मुख्य प्राणहै सो चक्षुरादि इन्द्रियरूप अन्य प्राणोंकों नेत्रादि यथायोग्य-स्थानविषे दर्शनादि क्रियाकरनेके अर्थ भिन्न २ अर्थात् एकका काम दूसरा न करे इसप्रकारसे। योजना करताभया। अरु अपने अपानादिभेद् रूप इतर प्राणोंकों गुदादि स्थानोविषे मलत्यागादि क्रियाके अर्थ योजना करताहै॥ ४। ३३॥ रामः रामः रामः रामः रामः रामः रामः रामः ॥

॥पायपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुख॥
॥नासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते म-॥
॥ध्ये तु समानः। एष ह्येतद्धुतमन्नं॥
॥समन्नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो॥
॥भवन्ति ॥ ५ ॥ ३४ ॥

५॥ हे सौम्य ग्रब मुख्य प्राण ग्रपने ग्र-पानादि भेदरूप पांच वायुकों जिस२ कार्य्यके ग्रर्थ जिन२ स्थानोंविषे नियुक्त करताहै तिसकों श्रवणकरो। "पायुपस्थेऽपानं"। ‹ गुदा ^ (ग्ररु) लिंगविषे ग्रपानकों। ग्रर्थात् जो गुदा द्वारा मलकों ग्ररु लिंगद्वारा मूत्रकों त्यागकरनेरूप क्रियाकाकर्त्ता ग्रपनाही भेदरूप ग्रपान नामवाला वायु तिसकों गुदा ग्ररु लिंगविषे‹ उक्त कार्य करनेके ग्रर्थ नियुक्त करताभया। ² ग्ररु॰ । "चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राण स्वयं प्रातिष्ठते"। ‹ चक्षु (ग्ररु) श्रोत्र मुख (ग्ररु) नासिकाविषे प्राण ग्राप स्थितहोताहै ; ‒ तिस ही प्रकार दर्शनादि ज्ञानरूप क्रियाका ^ कर्त्ता हुग्रा. चक्षु श्रोत्रके कहनेसें ज्ञानेन्द्रियां मुख ग्ररु नासिकासे ग्रावागमन करताहुग्रा चक्रवर्त्ती राजास्थानीय स्वयं (ग्राप) प्राण ^ स्थितहोताहै। ग्ररु॰ । "मध्ये तु समानः"।‹

मध्यविषे जो समान (वायुहै); अपना भेद समान वायु तिसकों प्राण अपान के मध्य नाभिरूपस्थानविषे नियुक्तकरताहै। अरु। "एष ह्येतद्धुतमन्नं समन्नयति"। ; यह ही इस भुक्त अन्नको लेजाताहै; यह ही वायु भोजनकिये अन्नादिकोंका रस जो उदरविषे होताहै तिसकों सर्व नाड़ियोंप्रति पृथक् २ सम (जिसका तिसकों) लेजाताहै एतदर्थ इसकों समाननामसे कहतेहैं। अरु। "तस्मादेताः सप्तार्च्चिषो भवन्ति"। ; ताते इतनी सात ज्वालावाला होताहै; तिसकारणसे यह समाननामवाला वायुही इस मुखद्वारसे उदरकुंडविषे हवनकिये अन्नादिकोंकें रसादिकोंकों प्रत्येक नाडियोप्रति सम पहुंचावताहै, एतदर्थ भोजनकिये अन्नादिकोके रसरूप समिधावाले जठराग्निरूप हेतुसे हृदयरूप देशसे यह सातसंख्यावाले मस्तकगत दो नेत्र, दो कर्णके, दो नासिकाके, एक मुखका, इन सातोंद्वार सम्बन्धी ज्ञानरूप ज्वालावालाहै ताते इसकों "सप्तार्च्चिसः"। ; सात अर्चीवाला ; कहतेहैं॥ अभिप्राय यहहै कि प्राणकरके ही दर्शन श्रवण अरु रूपादि विषयोंका प्रकाश होताहै॥ ५॥

६॥ हे सौम्य पिप्पलादमुनि कहतेभये कि

॥हृदि ह्येष आत्मा। अत्रैतदेक॥
॥शतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैक-॥
॥स्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडी॥
॥सहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति॥६॥

हे कौसल्य। "हृदि ह्येष आत्मा"। 'हृदयविषे ही यह आत्माहै' अर्थात् कमलाकार हृदयनाम-करके विख्यात जो मांस पिंड तदन्तरगत जे हृदयाकाश तिसविषे, यह आत्माकरके सहित। लिंग (जीव) आत्मा वर्त्तताहै। अरु-। "अत्रै-तदेकशतं नाडीनां"। 'यहां यह नाडीयोंकी (संख्या) एक अधिक एकसौ है (१०१) यहां। इस हृदयविषे मुख्य नाडीयां संख्या (गिनती) करके एकऊपर एक सौ होतीहैं। अरु-। "तासां शतं शतमेकैकास्यां"। 'तिनके मध्य एक-एकविषे सौ सौ भेदहैं' -तिन प्रत्येक मुख्य। नाडीविषे सौ सौ भेदहैं। अरु-। "द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडी सहस्राणि भवन्ति"। 'प्रतिशाखारूपनाडीके (भेद) बहत्तर बहत्तर हजार होतेहैं' -पुनः भी पृथक् पृथक् प्रतिशाखारूप नाडीके भेदरूप बहत्तर बहत्तरहजार नाडीयां होतीहैं। अर्थात् सुषुमणानामवाली एक। मुख्य नाडीरूप मूल (पीड़) की स्कंधशाखा।

(सर्वसे पुष्ट शाखा) रूप सौ १०० संख्यावाली मुख्य नाड़ीहैं तिन प्रत्येककी शाखारूप जो सौ सौ नाड़ीयां हैं, तिन एक एककी उपशाखारूप नाड़ीयोंकी संख्या बहत्तर बहत्तरहजारहोंतीहै। ताते सर्वमिलके बहत्तर करोड़नाड़ीहैं [॥ हे सौम्य अथ इनकों पुनः श्रवणकरो] [उक्त नाड़ीयोंकी संख्याका जो वर्णनहै सो वृक्षरूपसेहै, तहां हृदयकमलदेशसे जो निकली हुइ नाड़ीयांहैं तिनके मध्य जो सुषुम्णानामवाली मुख्यनाड़ीहै सो मूल (पीड) के स्थानापन्नहै, अरु तिसकी दश नाड़ीयां स्कंध (पुष्ट शाखा) रूपहैं, अरु उन स्कंधरूप दश नाड़ीयोंमेंसे प्रत्येककी नव नव स्थूलशाखाहै। एतदर्थ इसप्रकारहोनेसे एक मूलकी सुषुम्णानामवाली नाड़ीकों छोड़के स्थूलशाखारूप नव्वे ९० नाड़ीयां अरु दश स्कंधरूप शाखा यह सर्व मिलके एकसौ १०० संख्याकीहोती हैं। तिन सौ नाड़ीयोंके मध्य एक एक नाड़ीकी शाखारूप सौ सौ नाड़ीयां औरहैं। इसप्रकार होनेसे एक सुषुम्णा मुख्य नाड़ीहै अरु सौ स्कंधरूप नाड़ीयांहैं। अरु तिनकी शाखारूप दशहजारनाड़ीयांहैं। तिन दशहजार नाड़ीयोंमें से प्रत्येकनाड़ीयोंकी उपशाखारूप बहत्तर बहत्तरहजार ७२००० नाड़ीयांहैं। हे सौम्य इसप्रकारहोनेसे बहत्तरहजार ७२००० संख्याकों दशहजारसंख्यासे गुणाकरनेसे

एक मूलकी सुषुम्णानाडीकों छोडके बहत्तरकोड़ ७२००००००० नाडीयां होतीहैं इति ॥ । "आसुव्यानश्चरति ६"। ःतिसविषे व्यानवायु विचरताहै ;— तिन सर्व नाडीयोंविषे एक व्याननामवालावायु विचरताहै । एतदर्थ इस प्राणके भेद वायुकों सर्व शरीरविषे व्याप्तहोनेसे व्याननामकरके कहतेहैं ॥हे सौम्य .जैसे सूर्य्यबिम्बसे किरण सर्वओरकों निकलतीहैं तैसे शरीरविषे हृदयकमलसे सर्वओरकों गमनकरनेवाली जो नाडीयां तिनके सम्बन्धसे सर्वदेहमें व्याप्तहोके व्यानवायु वर्त्तताहै । अरु स्कंध आदिक जोजो शरीरकी संधि के स्थान अरु मर्मस्थानहैं तिन तिनविषे विशेषकरके वर्त्तताहै । अरु व्यानजोहै सो प्राण अरु अपानरूप वृत्तिके मध्य। उनके अभावकालमें उद्भूतवृत्तिरूपहै । अरु यह पराक्रमवाले पुरुषके कर्मोंका कर्त्ता होताहै ॥ ६॥ १५ हे सौम्य प्रथम जो कौसल्य मुनिने प्रश्नकियारहाकि "आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते"! मुख्यप्राण अपनेआप विभागकरके किसप्रकारसे स्थित होताहै. तिसका उत्तर चौथे, पांचमें, छठे, इन तीन वाक्योंसे पिप्पलादमुनिने कहा सो तेरे अर्थ कहा॥

७॥ हे सौम्य अब उदानवायुके स्थान कों कहते हुए, कौसल्यमुनिके "केनोत्क्रामति" ःकिसकरके

॥अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं ॥
॥लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव ॥
॥मनुष्यलोकम् ॥७॥ ३६ ॥

(शरीरसे) निकलताहै; इस चतुर्थ प्रश्नका उत्तर कहतेहैं ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे कौसल्य । "अथैक योर्ध्व उदानः"। एक ऊंचे उदानहै; अर्थात् उन एक अधिक सौ १०१ नाडीयोंके मध्य ऊंचे मूर्द्धनी ब्रह्मरंध्रस्थानविषे जानेवाली सुषुम्णा नामवाली मुख्यनाड़ी तिस एक नाड़ीसे विशेषहुआ ऊपरकों ब्रह्मरंध्रपर्यंत जाताहुआ अरु समानहुआ पैरसेलेके माथे पर्यंत वर्त्तमानहुआ उदानवायु विचरताहै । अरु- । पुण्येन पुण्य लोकं नयति-पापेन पापं । पुण्यसे पुण्य लोककों प्राप्तकरताहै पापसे पापकों ; -सो उदानवायु वेदशास्त्रविषे विधानकिये जे पुण्यरूपकर्म तिनके करनेसे कर्त्तापुरुषकों देवतादिकोंके स्थानरूप पुण्य (स्वर्ग) लोककों प्राप्तकरताहै । अरु तिन पुण्यकर्मसे विपरीत वेदशास्त्रकरके अविहित जे पापकर्म तिनके कर्त्ता पुरुषकों पशु,पक्षि, श्वान,शूकरादियोनिरूप पापमय नरककों प्राप्तकरताहै । अरु- । "उभाभ्यामेव मनुष्य लोकं"। दोनोंसे ही मनुष्यलोककों (प्राप्तकरताहै); पुण्य अरु पाप दोनोंके समुच्चयसे मनुष्य लोक (शरीर) कों

प्राप्तकरताहै ॥ ७ ॥ हे सौम्य सुषुम्णानाडीविषे अरु सर्वदेहविषे ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त उदानवायु व्याप्तहोयके वर्त्तताहै सो स्थूल शरीरसे लिंग (सूक्ष्म) शरीरके निकलनेमें अग्रसरहै, सो उपासनाके अनुसार उत्तम मध्यम अधम लोकोंविषे प्राप्तकरताहै, अर्थात् पुण्य देवयान पञ्चाग्नि आदिकोंकी उपासनावाले उपासककों ब्रह्मरन्ध्रकेद्वारा सर्वोत्तम ब्रह्मलोककों प्राप्तकरताहै। अरु सूर्य अग्नि आदिकोंके उपासककों चक्षु वागादिद्वारसे सूर्य अग्नि आदिकोंके स्वर्गादि मध्यमलोककों प्राप्तकरताहै। अरु वेदशास्त्रसे विरुद्ध निषिद्ध भूत प्रेतादिकोंके उपासकोंकों गुदलिंग नख केशादि अपवित्र मार्गोंसे पशु पक्षि श्वान शूकर चांडालादि पापमय नरकरूपयोनियोंकों प्राप्तकरताहै। अरु पाप पुण्य दोनोके सम अरु प्रधानतासे करनेवालेकों मनुष्यलोकके ताईं प्राप्त करताहै। अर्थात् पुण्य प्रधानहोय अरु पाप सामान्यहोय तब सो श्रेष्ठ कुलमें धन विद्या संतति आरोग्यता आदिकोंकरके सम्पन्नहोताहै अरु जो पाप प्रधानहोय अरु पुण्य सामान्यहोय तो सो पुरुष कुल विद्या धन संतति आरोग्यतादि सुखकरके रहित होताहै। अर्थात् जिसके पुण्य अधिक अरु पाप थोड़े होतेहैं तिन पुरुषोंकों इस मनुष्यलोकविषे ही सुख अधिक अरु दुःख थोड़ा होताहै। अरु जिनके

॥आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदय-॥
॥त्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः ॥
॥पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्या-॥
॥पानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समा-॥
॥नो वायुर्व्यानः ॥ ८ ॥ ३७ ॥

पाप अधिक अरु पुण्य थोडा होताहै तिसकों दुः-
ख बहुत अरु सुख थोड़ा होताहै, ताते पुरुषकों
इस लोक परलोकमें सुखकी प्राप्तिके अर्थ शास्त्र
विहित पुण्यकर्म ही करना उचितहै, अरु पुण्य
पापके समानहोनेसे दुःखसुखोंकी भी समान प्राप्ति
होतीहै। अभिप्राय यहहै कि मनुष्यदेहकी प्राप्ति
पाप पुण्य दोनोसे ही होतीहै। अरु जिन्होंने ज्ञाना-
ग्निकरके पाप पुण्य दोनोकों निर्मूलकियाहै सो
मोक्षहोताहै इति सिद्धम् ॥ ७ ॥ ३६ ॥

८॥ हे सौम्य उक्तप्रकार कौसल्यमुनिके चतुर्थ
प्रश्नका उत्तर कहके, अब अधिभूत अरु अधि-
दैवरूप बाह्यकों यह प्राण कैसे धारणकरेहै, यह पं-
चम प्रश्नका अरु अध्यात्मकों कैसे धारणकरेहै
इस षष्ट प्रश्नका उत्तर पिप्पलादमुनिने कहाहै तिस
कों श्रवणकरो ॥ पिप्पलाद उवाच ॥ हे कौसल्य
अर्थात् हे प्रश्नकरताओंमे कुशल, मैं कहोंगो सुन

। "आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः"। ' आदित्य ही प्रसिद्धबाह्यका प्राणहै यह ऊर्द्धको जाताहै यह इस चक्षुविषे स्थित प्राणको अनुग्रहकरताहुया वर्त्तताहै ' अर्थात् यह जो प्रकट सूर्यहै सोई बाहर समष्टिका प्राणहै अरु यह सूर्यरूप प्राण उदयहुआ उंचेको जाताहै (जैसे नाभिसे उदयहुआ प्राण ऊंचेको जाताहै तैसे) अरु यह सूर्यरूप प्राण इस चक्षु इन्द्रियविषेस्थित व्यष्टिप्राणको अपने प्रकाशसे अनुग्रहकरताहुआ अर्थात् रूपविषयके ज्ञानविषे चक्षुके प्रकाशको करताहुआ वर्त्तताहै। अरु—। "पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापान मवष्टभ्य"। ' पृथिवी विषे जो देवताहै सो इस पुरुषकी अपानवृत्तिको आकर्षणकरके वर्त्तताहै ' — तैसे ही पृथिवीविषे अभिमानी जो प्रसिद्ध [अग्नि] देवताहै सो यह पुरुषकी अपाननामवाली प्राणवृत्तिको आकर्षण द्वारा स्ववशकरके निचेहीको खींचनेरूप अनुग्रहको कर्त्ताहुआ वर्त्तताहै। यदि ऐसा न होय तो शरीर भारीहोनेसे गिरपडेगा। अथवा अवकाशसहित (चल) मैदान में ऊपरको जायगा। सो तो होता नहीं, यह अग्निरूप पृथिवीका ही अनुग्रह है। अर्थात् बाह्यका जो समष्टि अपानवायु अग्निदेवतारूप पृथिवी सो पुरुषकी जो अधोगामी

प्राणकी अपाननामनी वृत्तिहै तिसकों आकर्षण करतीहुई शरीरकों अपने आकर्षणमें रखवेहै इस ही हेतुसे यह शरीर भारीहुआ भी गिरता नहीं अरु ऊपरकों भी जाता नहीं यह ही बाह्य अपानका अनुग्रहहै । अरु— । "अन्तरा यदाकाशः समानो वायुर्व्यानः" । ' जो मध्यमें आकाशहै सो वायु समानरूपहै व्यानके अर्थ अनुग्रहकरताहै, ' यह जो स्वर्ग (सूर्य) अरु पृथिवीके मध्यमें आकाश है तिसविषे स्थित जो वायुहै तिसकों मञ्चस्थपुरुषवत्, आकाशनामसे कहतेहैं । ["मञ्चाः क्रोशन्तीति" ' मञ्च पुकारतेहैं ' इस वाक्यविषे जैसे मञ्च शब्द करके मंचकों ही ग्रहण न करके मञ्चस्थ पुरुष पुकारते हैं, ऐसा लक्षणसे ग्रहणहोताहै । तैसे ही यहां आकाश शब्दसे केवल आकाश ही का ग्रहण न करके तिस आकाशविषे स्थित वायुकों लक्षणासे ग्रहणकरतेहैं] अरु सो वायु समानरूपहै, सो अन्तर समानवायुके अर्थ अनुग्रहकरताहुआ वर्त्तताहै सो काहेसे को अन्तर समानवायु प्राण अरु अपानके मध्यमें स्थितहैं, अरु बाह्य समानवायु सूर्य्यरूप प्राण अरु पृथिवीरूप अपान इनके मध्यमें स्थितहै, तातें अन्तर समानवायु अरु बाह्य समानवायु इन दोनोकी अन्तर बाह्य प्राण अपानके मध्य स्थितहोनेसे समताहै. तातें समष्टि समान

॥तेजो ह वै उदानस्तस्मादुपशान्त-॥
॥तेजः। पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्प-॥
॥द्यमानैः॥ ९ ॥ ३८ ॥

वायु व्यष्टि समानवायुपर अनुग्रह करताहै ॥ अरु सामान्यरूपसे जो बाह्यका वायुहै सो बाह्यका व्यानवायुहै सो अन्तरके व्यानवायुके अर्थ अनुग्रह करताहै। क्यो कि व्याप्तिकी समताहै. अर्थात् अन्तरका व्यानवायु शरीरके अन्तर नखसिखपर्यन्त व्याप्तहै अरु बाह्यका व्यानवायु विराडात्माके अन्तर द्यौ (ब्रह्मलोक) से पाताल पर्यन्त व्याप्तहै। ताते व्याप्तिकी समतासे बाह्यका समष्टि व्यानवायु अन्तरके व्यष्टि व्यानवायुपर अनुग्रह करताहुआ वर्त्ताहै ॥ ८ ॥

९ ॥हे सौम्य पुनः पिप्पलादमुनि कहते भये। कि हे कौसल्य। "तेजो ह वै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजः"। प्रसिद्ध तेज ही उदानरूपहै ताते तेजसे रहित होताहै ; अर्थात् जो बाह्यका स्पष्ट सामान्य तेजहै सो बाह्यका समष्टि उदानरूपहै। अभिप्राय यह है की बाह्यका सामान्य तेजहै सो अपने पुकाशकरके शरीरस्थ उदानवायुके अर्थ अनुग्रह करताहै। हे सौम्य इसप्रकार सूर्य्यादिरूपसे मुख्य प्राणको प्राण अपान समान उदान व्यान

इनके अर्थ अनुग्रहकरनेके कथनसे अध्यात्मरूप प्राणादि वृत्तियोंके अनुग्रहका कर्त्तापना कहा। अरु सूर्य अग्नि आकाश सामान्यवायु अरु सामान्य तेज यह क्रमसे बाह्यके प्राणादिरूपहुआ मुख्य प्राण सूर्यादि अधिदैवरूप बाह्यकों धारताहै इस प्रकार कहा। अरु तिस सूर्यादिरूपसे जो स्थिति सोई तिसका धारणहै। अरु प्राण अपानादिकोंके अनुग्रहसे चक्षुरादिकोंके अनुग्रहसे तिसद्वारा मुख्य प्राणकों, उन चक्षुरादि अधिभूतस्वरूप बाह्यरूप का धारणकर्त्तापनाकहा। अरु "स प्राणस्तचक्षुः सोऽपानः सा वाक् स व्यानस्तच्छोत्रं स समानस्तन्मनः स उदानः स वायुरिति" श्रुत्यन्तरे। सो प्राण सो चक्षु सो अपान सो वाणी सो व्यान सो श्रोत्र सो समान सोमन सो उदान सो वायु। इस श्रुतिकरके चक्षुरादिकोंकों प्राणादि स्वरूपताके कथनसे अरु चक्षुरादिकोंके अनुग्रहकर्त्तापनेके कहनेसे चक्षुरादिरूप अध्यात्मका धारणकर्त्तापना मुख्य प्राणकों कहा॥ इस रीतिसे यहां पर्यन्त बाह्यको कैसे धारणकरताहै अरु अध्यात्मकों किसरीतिसे धारणकरताहै, इन पंचम अरु षष्ट दोनो प्रश्नोका उत्तर कहा, यह जानना] जिसकरके तेज स्वभाववाला अरु शरीरसे लिंगको बाहर

॥यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राण-॥
॥स्तेजसा युक्तः । सहात्मना यथा सङ्क-॥
॥ल्पितं लोकं नयति ॥ १० ॥ ३६ ॥

निकसनेरूप क्रियाका करनेवाला उदानवायु भी बाह्यके तेजके अनुग्रहकों पायाहुआ ही शरीरविषे वर्त्तताहै, तिस ही कारणसे जब जीवके जीवनेके हेतु कर्म (प्रारब्ध) के उपरामभये बाह्यके तेजरूप उदानके अन्तर उदानवायुके निमित्तके, अनुग्रहके अभावसे लौकिक-पुरुष स्वाभाविकतेजसे रहित होताहै, तब उससमय उसपुरुषकों क्षीणआयुवाला मरनेके योग्य जानना। अरु "पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ९"। "मनविषे प्रवेशकों प्राप्तभयी इन्द्रियोंके साथ अन्य शरीरकों पावताहै"। सो मरनेवाला तेजादिकोंके शान्तभये पीछे मनविषे प्राप्तभयी जे वागादि इंद्रिया "वाङ्मनसि सम्पद्यते"। तिनकेसाथ अध्यासकेवशभया अन्यशरीरकों पावताहै॥ ९ ॥ ३५॥

१०॥ हे सौम्य हे कौसल्य! "यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति"। "यह जिसमें चित्तवालाहोताहै तिसकरके प्राणकों पावताहै"। अर्थात्, यह जीव जिस पशुपक्षि आदिक शरीरमें चित्तकरकेयुक्त

होताहै, अर्थात् जिन शरीरोंमें चित्त संकल्पादि चेतना धर्म वाला होताहै, तिन शरीरोंमें मरण कालविषे उस चित्तके संकल्पसे इन्द्रियोंकेसाथमिलके मुख्य प्राणवृत्तिको पावताहै, अर्थात् मरणकालविषे इन्द्रियोंकीवृत्तिके क्षीणभये यह जीव मुख्य प्राणवृत्तिरूपसे ही स्थितहोताहै। तब इसके ज्ञाति सम्बन्धिकेलोग परस्परमें कहतेहैं कि अभीतो यह जीवताहै। अरु—। "प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथा सङ्कल्पितं लोकं नयति"। (प्राण तेजकरके युक्तहुआ सहित आत्माके जैसा निश्चय कियाहै तैसे लोकको पावताहै)—सो प्राण जब बाह्यके तेजरूप उदानवायुके अनुग्रहको प्राप्तभयीजे अन्तर,उदानवृत्ति जो उत्क्रमणमें प्रधानहै, तिसकरके युक्तहुआ शरीरके अधिपति जीवात्मा (साभासलिंग) के साथ तादात्म्यभावको पावता है, तब तिस तादात्म्यताकरके भोक्तारूपभया प्राण उक्तप्रकार उदानवृत्तिसे ही युक्तहुआ तिस ही भोक्ताको कि जिसके तादात्म्यसे आप भोक्ता भयाहै, पुण्य पापरूप स्वकर्मके वशसे जैसा इस जीवात्माका अभिप्रायहै तैसे ही लोकको प्राप्त करताहै ॥ १० ॥ ३९ ॥

११ ॥ हे सौम्य [उक्तप्रकार करके व्यष्टि

॥य एवं विद्वान प्राणं वेद। न हास्य॥
॥प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष ॥
॥श्लोकः ॥ ११ ॥ ४० ॥

समष्टि प्राणके स्वरूप स्थानादिकोंका निर्णयकरके अब तिसकी उपासनाका विधान करतेहैं। यहां यह अर्थहै कि– आत्मासे प्राण उपजताहै सो मनकेकिये धर्म अधर्मसे शरीरकेअर्थ अनुग्रहकरताहै। अरु आपके पांचप्रकार विभागकरके पायु (गुदा) अरु उपस्थ (लिंग) इन स्थानोंविषे अपने ही भेद अपानवायुकों स्थापनकरेहै। अरु चक्षु श्रोत्र मुख नासिकारूप स्थानविषे स्वस्वरूप प्राणकों ही स्थापितकरेहै। अरु नाभिरूपस्थानविषे अपने समानरूप भेदकों स्थापनकरेहै। अरु नाडियोंके समुहरूप स्थानविषे अपने भेद व्यानरूपकों स्थापितकरेहै। अरु सुषुम्णानाडीरूप स्थानविषे अपने भेद उदानवायुकों स्थापित करेहै। अरु प्राण अपान समान व्यान अरु उदान, इनके अनुग्रह कर्ता बाह्यरूप सूर्य्य पृथिविदेवता आकाश वायु अरु तेजरूपसे अधिदेवकों धारणकरेहै। अरु सूर्य्यादिकोंके अनुग्रहसे प्राणादि वृत्तिरूप अध्यात्मकों अरु चक्षु वाक् श्रोत्र मन अरु त्वचारूप अरु चक्षुरादि

॥य एवं विद्वान प्राणं वेद। नहास्य॥
॥प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष ॥
॥श्लोकः॥ ११ ॥ ४० ॥

समष्टि प्राणके स्वरूप स्थानादिकोंका निर्णयकरके अब- तिसकी उपासनाका विधान करतेहैं। यहां यह अर्थहै कि– आत्मासे प्राण उपजताहै सो मनकेकिये धर्म अधर्मसे शरीरकेअर्थ अनुग्रहकरताहै। अरु आपके पांचप्रकार विभागकरके पायु (गुदा) अरु उपस्थ (लिंग) इन स्थानोंविषे अपने ही भेद अपानवायुकों स्थापनकरेहै। अरु चक्षु श्रोत्र मुख नासिकारूप स्थानविषे स्वस्वरूप प्राणकों ही स्थापितकरेहै। अरु नाभिरूपस्थानविषे अपने समानरूप भेदकों स्थापनकरेहै। अरु नाडियोंके समुहरूप स्थानविषे अपने भेद व्यानरूपकों स्थापितकरेहै। अरु सुषुमणनाडीरूप स्थानविषे अपने भेद उदानवायुकों स्थापित करेहै। अरु प्राण अपान समान व्यान अरु उदान, इनके अनुग्रह कर्ता बाह्यरूप सूर्य्य पृथिविदेवता आकाश वायु अरु तेजरूपसे अधिदेवकों धारणकरेहै। अरु सूर्य्यादिकोंके अनुग्रहसे प्राणादि वृत्तिरूप अध्यात्मकों अरु चक्षु वाक् श्रोत्र मन अरु त्वचारूप अरु चक्षुरादि

॥य एवं विद्वान प्राणं वेद। न हास्य॥
॥प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष ॥
॥श्लोकः॥ ११ ॥ ४० ॥

समष्टि प्राणके स्वरूप स्थानादिकोंका निर्णयकरके अब तिसकी उपासनाका विधान करतेहैं। यहां यह अर्थहै कि– आत्मासे प्राण उपजताहै सो मनकेकिये धर्म अधर्मसे शरीरकेअर्थ अनुग्रहकरताहै। अरु आपके पांचप्रकार विभागकरके पायु (गुदा) अरु उपस्थ (लिंग) इन स्थानोंविषे अपने ही भेद अपानवायुकों स्थापनकरेहै। अरु चक्षु श्रोत्र मुख नासिकारूप स्थानविषे स्वस्वरूप प्राणकों ही स्थापितकरेहै। अरु नाभिरूपस्थानविषे अपने समानरूप भेदकों स्थापनकरेहै। अरु नाड़ियोंके समुहरूप स्थानविषे अपने भेद व्यानरूपकों स्थापितकरेहै। अरु सुषुम्णानाड़ीरूप स्थानविषे अपने भेद उदानवायुकों स्थापित करेहै। अरु प्राण अपान समान व्यान अरु उदान, इनके अनुग्रह कर्त्ता बाह्यरूप सूर्य्य एथिवि देवता आकाश वायु अरु तेजरूपसे अधिदैवकों धारणकरेहै। अरु सूर्य्यादिकोंके अनुग्रहसे प्राणादि वृत्तिरूप अध्यात्मकों अरु चक्षु वाक् श्रोत्र मन अरु त्वचारूप अरु चक्षुरादि

इन्द्रियोंकरके ग्रहणकरनेयोग्य रूपादि विषयरूप अधिभूतकों धारणकरेहै । अरु सोई प्राण उदानवृत्तिसे भोक्ताकरके युक्तहुआ भोक्ता(जीवात्मा) कों देहत्यागानंतर लोकान्तर किंवा देहान्तरप्रति ले जाताहै ॥ हे सौम्य सोई प्राण सर्वमें ज्येष्ठ श्रेष्ठ है, सोई प्रजापतिहै, सोई अन्नका भोक्ताहै । इसप्रकार उत्पत्त्यादि उक्त विशेषणोंकरके युक्त प्राणकों जानताहै सो अग्रिमकहे फलकोंपावताहै] ॥ हे सौम्य हे कौसल्य ।"य एवं विद्वान् प्राणं वेद"। ‹ जो विद्वान् ऐसे प्राणकों जानताहै› अर्थात् जो कोई ब्राह्मणादि विद्वान् कहेप्रकार उत्पत्त्यादि विशेषणोंकरके युक्त मुख्य प्राणकों जानताहै अर्थात् उपासताहै तिसकों इसलोक परलोक सम्बन्धि जो फल प्राप्तहोताहै सो वेद भगवान् कहतेहैं-।"न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेषश्लोको भवति"। ‹ इसकी प्रजा उच्छेदकों पावती नहीं › अरु ‹ मरणधर्मसेरहित होताहै तिसविषे यह श्लोक (मन्त्र) है › -› इस विद्वान् की ‹ कि जो प्राणका सम्यक् उपासकहै, पुत्र पौत्रादिरूप प्रजा ‹उसकी विद्यमानतामें, विनाशकों पावती नहीं । अरु शरीरके पतनभये यह प्राणोपासकपुरुष मुख्य प्राण (सूत्रात्मा) के साथ सायुज्यता(अभेदता) कों पाय मरणं

॥उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्व- ॥
॥ञ्चैव पञ्चधा ऽऽध्यात्मञ्चैव प्रा-॥
॥णस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञाया-॥
॥मृतमश्नुते ॥ १२ ॥ ४१ ॥
॥इति प्रश्नोपनिषद्गत तृतीय प्रश्नः ३॥

धर्म रहित अमरहोताहै— [यह जो प्राणकेसाथ एकतारूप अमृतभावहै सो प्राणके सकाम उपासकको अन्तमें होताहै । अरु निष्काम उपासककों चित्तकी एकाग्रता अरु शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानहोय मुख्य अमृतत्वकी प्राप्तिहोतीहै] —अरु इस ही अर्थविषे यह अग्रिमवाक्यरूप मन्त्र प्रमाणहै ॥ इति सिद्धम् ॥ ११ ॥ ४० ॥

१२॥हे सौम्य हे कौसल्य ।"उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वञ्चैव पञ्चधा अध्यात्मञ्चैव प्राणस्य"। १ प्राणकी उत्पत्तिकों आगमनकों स्थानकों अरु पांचप्रकारसे स्वामित्वभावकों ५अरु अध्यात्मकों ; अर्थात् प्राणकी परमात्मासे उत्पत्तिकों अरु मनकेकिये कर्मोंसे इस शरीरविषे आगमनकों अरु गुदा उपस्थादि स्थानोविषे । स्थितिकों अरु चक्रवर्त्तिराजावत् प्राणवृत्तिकी पांचभेदके पांचप्रकारसे स्थापनरूप स्वामित्व।

को। अरु सूर्य्यादिरूपसे स्थितिरूप बाह्यकों। १ अरु प्राणादिवृत्तिरूपकी चक्षुरादिकोंके आकार से स्थितिरूप अन्तर अध्यात्मकों। "विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुते"। १ जानके अमरणभावकों पावताहै। हे सौम्य इसप्रकार प्राणकों सम्यक्प्रकार जानके उपासनाकरनेवाला विद्वान् प्राणकेसाथ अभेदतासे ऐक्यभावरूप अमृतकों पावताहै। २ जानके अमृतकों पावताहै। यहां जो द्विवारकथनहै सो तृतीयप्रश्नकी समाप्त्यर्थ अथवा अपरविद्यासम्बन्धि प्रश्नोंकी समाप्त्यर्थ किंवा अपरब्रह्मकी उपासनाविद्याकी समाप्तिके अर्थहै ॥ इति सिद्धम् ॥ १२ ॥ ४१ ॥ ॐ

॥इति प्रश्नोपनिषद्गत तृतीय प्रश्नः॥

॥भाषा टीका॥

॥पूर्वार्द्ध की॥

॥समाप्ता॥

॥हरिः॥

॥ॐ॥

॥तत् सत् ब्रह्म॥

॥३॥

॥ अथ चतुर्थ प्रश्न प्रारभ्यते ४ ॥

॥अथ हैनं सौर्य्यायणी गार्ग्यः प-॥
॥प्रच्छ। भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि ॥
॥स्वपन्ति कान्यस्मिन् जागृति कतर ॥
॥एष देवः स्वप्नान् पश्यति कस्यैतत् ॥
॥सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रति-॥
॥ष्ठिता भवन्तीति॥ १ ॥ ४२ ॥

॥अथ प्रश्नोपनिषद्गत चतुर्थप्रश्न भाषा टीका
॥ प्रारभ्यते ॥

१ ॥हे सौम्य प्रथम प्रश्नकरके कहेप्रकार, कर्म उपासनाकी, परिणाम, गतिकों श्रवणकरके तिनसे वैराग्यवान्हुआ। अरु द्वितीय तृतीय प्रश्नकरके कहीगई जे प्राणकी उपासना तिसकरके चित्तकी एकाग्रता अरु शुद्धिवालाहुआ अरु इसही करके विवेकादि साधन चतुष्टय करके सम्पन्न जो उत्तमाधिकारीकों पराविद्या (ब्रह्मविद्या) कि जिसकरके अक्षरब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै तिसके श्रवणार्थ चतुर्थ पंचम अरु षष्ठ इन तीनो प्रश्नों का प्रारंभ करते हैं ॥

॥ हे सौम्य। "अथ हैनं सौर्य्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ"। तिसके पश्चात् इसकों सौर्य्यमुनिका पुत्र गार्ग्यनामामुनि प्रश्नकरताभया ? अर्थात्।

कौसल्यनाममुनिके समाधानहोनेके पश्चात् सौ-
र्य्यमुनिका पुत्र गार्ग्यनामवालामुनि इस उत्तरदा-
ता सर्वज्ञ अपने आचार्य पिप्पलादमुनिकों पूछ-
ताभया ॥ यहां अभिप्राय यहहै कि पूर्वके, प्रथ-
म द्वितीय, अरु तृतीय, इन तीनों प्रश्नोंसे संसार
रूप व्याकृत, अर्थात् कार्यमय जगत्के अन्तर-
गत साध्य साधनमय, अर्थात् कर्म उपासना।
अरु तिनके फलमय, अनित्य सर्व प्राणरूप।
अपरब्रह्मकी विद्याके विषयकों समाप्तकरके।
अब असाधनरूप प्रमाणोंकीप्रवृत्तिसे रहित।
अर्थात् अप्रमेय मनका अगोचर इन्द्रियोंका।
अविषय अर्थात् कार्यभावरहित शिव शान्त
अविकारी अक्षर सत्य परविद्याकरके गम्य।
बाहर भीतर अजन्मा पुरुषनामवाला परब्रह्म-
की विद्याका विषयरूप जो वस्तु सो कहनेके।
योग्यहे। एतदर्थ अग्रिम ४-५-६-इन तीन।
प्रश्नोंका प्रारंभ करतेहैं। हे सौम्य [इस प्रकार
सामान्यरित्या आगेकहनेके तीनों प्रश्नोंका सम्बं-
ध कहके- अब केवल चतुर्थप्रश्नके ही सम्बन्ध।
कों कहतेहैं] तहां—"यथा सुदीप्तात् पावकाद्वि
स्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः। तथाक्ष-
राद्विविधा सौम्य भावाःप्रजायन्ते तत्र चैवापिय-
न्ति" जैसे प्रज्वलित अग्निसे अग्निके अवयव

चिनंगारी अनेकप्रकारकी सहस्रावधि निकलती हैं। हे सौम्य तैसे ही अक्षर (परब्रह्म) से अनेकप्रकारके पदार्थ। उपजते हैं अरु तहां ही लीन होतेहैं ; इसप्रकार मुंडक उपनिषद्के द्वितीय मुंडककी प्रथम श्रुतिमें कहाहै। ~ कौनसे वो सर्व भावहैं जो अक्षरब्रह्मसे उपजतेहैं। वा किसप्रकार वे भाव विभागकों पायके तहां ही लीन होते है। अरु किस लक्षणवाला वो अक्षरब्रह्म है। इस अर्थके श्रवणकरनेकी इच्छासे अव गार्ग्यनामामुनि प्रश्नोंकों प्रकट करता भया॥ गार्ग्य उवाच। "भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति"। ं हे भगवन् पुरुषविषे कौन सोवताहै (अरु) कौन इसविषे जागताहै (अरु) जो यह देव स्वप्नोंकों देखताहै सो कौन है ; ~ हे भगवन् इस मस्तक हाथ पांव आदि अंगोंवाले शरीररूप पुरुषविषे कौनसे करण अर्थात् मन आदि अन्तःकरण अरु चक्षुरादि बाह्यकरण इनमेंसे कौनसे करण अपने व्यापारसे उपराम रूप निद्राको करतेहैं। अरु कौनसे करण इस पुरुषविषे अपने व्यापारके करनेरूप जागरणकों करतेहैं। अरु कार्य अरु करणरूप देवताओंके मध्य जो यह देव स्वप्नोंकों देखताहै

सो कौन है । अभिप्राय यह है कि जागृत्के देखनेसे निवृत्तभये पुरुषकों स्वशरीरके भीतर जोजागृत्वत् ही दर्शनादि हैं तिसकों स्वप्न कहतेहैं, सो तिसका क्या कार्य देह अरु प्राण) रूप देवसे निर्वाहकरतेहैं, अथवा करण (मन आदि) रूप किसी भी देवसे निर्वाह करतेहैं। अरु– "कस्यैतत् सुखं भवति"। "यह सुख किसकों होताहै; –जागृत् अरु स्वप्नके व्यापारके निवृत्तहुए प्रसन्न अरु विषयके अभावमात्रसे ही देखनेयोग्य अरु विनाशरहित आत्माका स्वरूपभूत जो यह सुखहै सो किसकों होताहै । अरु– । "कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्ति"। "किसविषे यह सर्व लीनहोतेहैं; –जिसकालविषे जागृत्स्वप्नके व्यापारसे निवृत्तभये सर्व जीव, जैसे मधुविषे रस, अर्थात् जैसे मधुकर मक्षिकाके उदरविषे सर्व रस तद्वत्, अरु समुद्रमें प्रवेशकों प्राप्तभयी नदीयोंवत्, किसविषे एकताकों प्राप्तहोके विवेचनके अयोग्यहुये लीन होतेहैं। अर्थात् [इस चतुर्थ प्रश्नविषे अक्षर (परमात्मा) के स्वरूपकों ही श्रवणकरनेकी इच्छाहोनेसे तिसके निर्णयहोनेके अर्थ । "कानि स्वपन्ति"। "कौन सोवताहै; –इत्यादि पांचप्रकारके अवान्तर प्रश्नवाला जो प्रश्नहै सो जागृदादि अव-

स्थाके मिस अवस्थाओंके धर्मीविशेषके निर्णयार्थहै। अन्यथा विचारनेसे उन जाग्रदादि अवस्थाओंको आत्माके धर्म होनेको शंकाके होनेसे। तिस आत्माके निर्विशेष भावके निर्णयकी असिद्धिहै। तहां प्रथम प्रश्नकरके जाग्रत्का धर्मी पूछा। क्यों कि स्वप्नअवस्थामें जिसके व्यापारकी निवृत्तिके होनेसे जाग्रत नहींहै सो तिस जाग्रत्का धर्मीहै इसप्रकार निश्चयकरनेको शक्य है ताते॥ अरु द्वितीय प्रश्नकरके तीनों ही अवस्थाविषे शरीरका रक्षणहोना किसके धर्मसे है, यह प्रश्न किया। क्यों कि जागतेहुए अरु व्यापारोंसे निवृत्त भये प्राणकों ही शरीरका रक्षकहोनेका संभवहै ताते॥ अरु तृतीयप्रश्नकरके स्वप्नके धर्मीके अर्थ प्रश्न किया॥ अरु चतुर्थप्रश्नकरके सुषुप्तिका धर्मी पूछा। क्यों कि"सुखमहमस्वाप्समिति" मैं सुख जैसेहोय, तैसे, सोआथा। इसप्रकारके। सुषुप्तिसे जाग्रत्भये पुरुषकों स्मरणके होनेसे सुखके सुषुप्तकेसाथ सम्बन्धहै ऐसा जानाजाताहै। ताते। अरु सुषुप्ति अवस्थाविषे प्रकाशमान जो यह, अंगुलीनिर्देशवत् प्रकट सुखहै सो "मैं सुखसे सोआथा," इस स्मरणका मूलभूतहै। अर्थात् जाग्रत्भये जो सुषुप्तिके सुखका स्मरणहै सो सुषुप्तिके आनन्दके आश्रयहै ताते सुषुप्तिका

सुख जाग्रत् भये सुखकी स्मृतिका मूलभूत है। एतदर्थ चतुर्थप्रश्नसे सुषुप्तिका धर्मी पूछा ॥ अरु पंचम प्रश्नकरके तीनोंअवस्थाकरके रहित अरु तीनों ही अवस्थाके स्थितिकी "भूमा" भूमीरूप। तुरीय नामवाला अथवा तुरीयरूप अक्षर पूछा ॥ यहां "तस्मिन् काले" ः तिस कालविषे ; इस प्रकार आरंभ कियेहुए पंचम प्रश्नकरके यद्यपि। तुरीय पदके अर्थ ही प्रश्न है सुषुप्तिके अर्थ नहीं तथापि संसारदशाविषे सर्व उपाधिसे रहित जो तुरीय अवस्थाहै तिसके अभावभयेसे किसि न किसी उपायसे ही उस तुरीयपदका देखावना होताहै ताते, उस सुषुप्तिवाले पुरुषवत् ज्ञानकेहुए भी, अर्थात् जैसे सुषुप्तिअवस्थावाले। कों सुखरूपका प्रकट ज्ञानहोताहै, तिसकेहोतेहुए भी तहां (सुषुप्तिमें) अन्यउपाधियोंसे रहित होनेकरके तहां ही सर्वउपाधियोंके विवेकके कारनेसे तुरीयपदका देखना सुगमहोताहै। ताते तिस सुषुप्तिकालविषे तुरीयपदके अर्थ। सर्वके लयका कथनहै। अरु यहा सुषुप्तिअवस्थाविषे सर्वप्रकारके लयके देखावनेका अभावहै, ताते भेदज्ञानरूप विवेकके अभावमात्रसे ः मधुविषे रस अरु समुद्रविषे नदियांवत् यह दोनों दृष्टान्तहै अर्थात् मधुविषे रसकों।

अरु समुद्रविषे नदियोंकों यह विवेक नहीं रहता जो हम अमुक वृक्षके रस अरु अमुक नदीका जल है। इस अभिप्रायसे 'विवेचनकें अयोग्य ऐसा भाष्यमें कहाहै॥ एतदर्थ पूर्व विवेकके अयोग्यहुए पीछे लीनहोतेहैं। जैसे जलमें डूबता प्रथम दर्शनके अयोग्यहुए पीछे डूबताहे तैसे॥ इत्यर्थः॥ शंका॥ इस पंचम प्रश्नकरके भी अविद्याकी वासनासे विवेचनकरनेकों अयोग्यहुआ सुषुप्तिके धर्मोंके अर्थ ही प्रश्न कियाहोगा॥ समाधान॥ यह शंका करनेयोग्य नहीं, क्यों कि। "स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते"। 'सो परमात्मारूप अक्षरविषे लयकों पावतेहैं इसप्रकार आगे इस ही प्रश्नके नवमवाक्यकें अन्तविषे कहेंगें तातें। अरु सुषुप्तिमें अज्ञानविषे ही लयहोताहे तातें। अरु "एष हि द्रष्टा"। 'यह ही द्रष्टाहे' इत्यादि इस प्रश्नके नवम वाक्यकी आदिमें कहे अज्ञानविषे प्रतिबिम्बित भोक्ता जीवके भी अक्षरविषे लयकाकथनहे तातें। अरु "अच्छायं"। 'छाया रहित' अर्थात् अज्ञान रहित, यह इसही प्रश्नके दशम वाक्यविषे अज्ञानके अभावका कथनहै तातें। एतदर्थ इस– [कस्मिन्नु सर्वे प्रतिष्ठिताभवन्ति "। 'किसविषे सर्व लय

होते हैं॥ ~ पंचम प्रश्नकरके तुरीयरूप अक्षर ही पूछा है। इति भावः] ॥ शंका ॥ कार्य कारणसे ॥ व्यतिरिक्त (जुदा) किसीएक लयके आधारसे ॥ सामान्यरीतिकरके जानेहुए (किसविषे लय होता है) ऐसा विशेषार्थ प्रश्न उक्त है। अरु यहां जिसकरके उस लयके आधारका सामान्यपनेकरिके ॥ ज्ञान नहीं भया है तब तिसके विशेषस्वरूपके अर्थ प्रश्न कैसे घटेगा किन्तु न घटेगा। अरु जो ॥ ऐसा कहो कि लयको आधारसहित होनेकरके ॥ सामान्यपनेसे तिस लयके आधारका ज्ञान भया है। सो कहना बने नहीं, क्यों कि तिस तिस कार्य घटादिकोंका उपादान मृत्तिकादि अचेतनोंको ही तिन घटादिकोंके आधारहोनेकरिके तिन मृत्तिकादिकोंसें पृथक् चेतनरूप आधारकी असिद्धि है। ॥ एतदर्थ यहां वादी शंकाकरता है] कि ~ जैसे त्यागकिये दात्रि (दरांति धान्यआदिक काटनेका शस्त्र) आदि करणोंवत्, अपने२ व्यापारसे निवृत्त भये इन्द्रियादि करण पृथक्२ ही अपने२ आत्म (कारण) स्वरूपविषे स्थित होते हैं, ऐसा मानना ॥ युक्त है, एतदर्थ यहां सुषुप्तिको प्राप्त होके पुरुषोंके करणों (इन्द्रियों) का किसी भी विषे एकताभावके प्राप्तिकी आशंकाकी प्राप्ति कहांसे होगी, किन्तु न होगी ॥ समाधान ॥ हे वादी प्रश्नकरनेवाले

की यह शंका — कि किसविषे सर्व लयहोतेहै, —युक्त हीहै, क्यों कि जिसकरके जाग्रतविषे संघातरूपभये करण(इन्द्रियादि) सो अपने स्वामी (संघाताभिमानी) के अर्थ होतेहैं तातें परतन्त्रहैं। अरु एतदर्थही सुषुप्तिविषे भी एकत्रहुए करणों (इन्द्रियों) का परतन्त्रभावसे ही किसी नकिसी वस्तुविषे मिलनां युक्त ही है एतदर्थ आशंकाके अनुसारही यह प्रश्नहै। अर्थात् अन्तःकरणविषे विद्यमान जे शंका तिसके अनुसार वाणीकरके कहा यह प्रश्नहै। अरु— यहां लयरूप विशेषणकरके युक्त जो सोपाधिआत्मा तद्विषयक प्रश्न नहीं, किन्तु जैसे काक (कौआ) करके उपलक्षित देवदत्तका ग्रह, तैसे सर्वके लयरूप उपलक्षणकरके लक्षित जे शुद्ध आत्मा तद्विषयक प्रश्नहै। इस तात्पर्यसे कहतेहैं] —यहां तो कार्य अरु कारणका संघातहै सो सुषुप्ति अरु प्रलयकालमें जिसविषे लीन होताहै "स कोनु स्यादिति" (सो कौ नहै) इसप्रकार जानने कीइच्छा वालेका— । "कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति"। (किसविषे सर्व भलीप्रकार लीनहोताहै) — जो यह प्रश्नहै सो शंकानुसार युक्त ही है ॥ १ ॥ ४२ ॥

रामः रामः रामः रामः रामः रामः रामः रामः राम

॥तस्मै स होवाच। यथा गार्ग्य॥
॥मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छन्तः सर्व्वा ए-॥
॥तस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति। ताः पुनः
॥पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्व्वं॥
॥परे देवे मनस्येकीभवति। तेन तर्ह्येष॥
॥पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति
॥न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते
॥नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपि-
॥तीत्याचक्षते॥ २ ॥ ४३ ॥

---

२ ॥हे सौम्य उक्तप्रकार जब प्रश्नकीयातब। "तस्मै स होवाच"। 'तिसकेअर्थ सो स्पष्ट कहताभया' अर्थात् तिस गार्ग्यमुनि नामवाले अपने शिष्यके अर्थ सो पिप्पलादमुनिनामवाले सर्वज्ञ आचार्य कहतेभये कि "यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छन्तः सर्व्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति"। 'हे गार्ग्य जैसे सूर्य्यके सर्व किरण अस्तहुए इस तेजोमंडलविषे एकत्र होते हैं'—हे गार्ग्य जो तैने प्रश्न कियाहै तिसका उत्तर सावधानतासे श्रवणकर। जैसे सूर्य्यके सर्व किरण अस्तताको प्राप्तहुए इस तेजोमंडलविषे एकताको पावतेहैं। अरु—। "ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्ति"। 'सो पुनः पुनः उदयकोपाये

हुए फैलतेहैं ;→ सो तिसही सूर्य्यके किरण वारंवार उदयताकों पाएहुए सर्वओरकों फैलतेहैं—१

। "एवं ह वै तत् सर्व्वं परं देवे मनस्येकी भवति"। ःऐसे प्रसिद्ध यह सर्व परम देव मनविषे एकत्र होतेहैं ;→ जिसप्रकार यह दृष्टान्तहै, इसप्रकार । यह प्रसिद्ध जो विषय अरु इन्द्रियादिकोंका समूह अरु चक्षुरादि देवताओंकों,मनकेआधीन होनेसे परमोत्कृष्ट देव (प्रकाशवान्) जो मनहै तिसविषे,←, जैसे तेजोमय मंडल (सूर्य्य) विषे किरणोंकी एकताहोतीहै तैसे,→ स्वप्नकालमें एकताकों प्राप्तहोतेहैं । अरु जाग्रत्की इच्छावाले पुरुषके विषय अरु इन्द्रियादि,←, जैसे सूर्य्यमण्डलसे निकसेहुए किरण अपने प्रकाशकर्त्तव्यरूप व्यापारकों करतेहैं तैसे,→ मनसे निकसेहुए अपने२ व्यापारकों करतेहैं । अरु जिसकरकें स्वप्नकालमें शब्दादि विषयोंके ज्ञानके साधक जे श्रोत्रादि इन्द्रियां सो मनविषे एकताकों प्राप्तहुएवत् अपने करणत्वरूप व्यापारसे निवृत्त होतेहैं— । "तेन तर्ह्येष पुरुषो, न शृणोति, न पश्यति, न जिघ्रति, न रसयते, न स्पृशते, नाभिवदते, नादत्ते, नानन्दयते, न विसृजते, नेयायते, स्वपितीत्याचक्षते २"। ःतिससे स्वप्नकालविषे यह पुरुष, श्रवणकरतानहीं, देखतानहीं,

गंधलेता नहीं, रसकास्वाद लेता नहीं, स्पर्शकरता नहीं, बोलता नहीं, ग्रहणकरतानहीं, आनन्दकों पावता नहीं, मलमूत्रकों त्यागता नहीं, चलता नहीं, (किन्तु) सोवता है ऐसा कहतेहैं, ~तिसकरके तिस स्वप्नकालविषे यह बुद्धदत्तादि नामवाला शरीररूप पुरुष, सुनता नहीं, देखतानहीं, गंधलेता नहीं, रसादिकोंका स्वाद लेता नहीं, स्पर्श करता नहीं, कुछ भी बोलतानहीं, कुछ भी लेता नहीं, विषयजन्य आनन्दकों प्राप्तहोता नहीं, मलमूत्रादिकोंकों त्यागता नहीं, कहींकों भी चलता नहीं, किन्तु उसकों सोवताहै ऐसा कहते हैं ॥ २ ॥ ४३॥ हे सौम्य यहां पर्यन्त ! "एतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति"। "इस शरीरविषे कौनसोवताहै इस प्रथमप्रश्नका उत्तर कहा ॥

---

३ ॥ हे सौम्य अब ! "कान्यस्मिन् जाग्रति"। "इस शरीरनामक पुरविषे कौन जागताहै" यह जो गार्ग्यमुनिका द्वितीय प्रश्नहै तिसका उत्तर जो पिप्पलादाचार्यने कहाहै तिसकों भी श्रवण करो ॥ पिप्पलाद उवाच ॥ हे गार्ग्य ! "प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति"। "इस पुरविषे प्राणरूप अग्नि ही जागते हैं" अर्थात् चक्षुरादि सर्व करणोंकों सोये (मनविषे एकत्र) हुए

॥प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जा-॥
॥ग्रति। गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो।॥
॥व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो यद्गार्हपत्या-॥
॥त्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयःप्राणः॥
॥३॥४४॥

इस नव किम्वा दश किम्वा एकादश द्वारवाले देहरूप पुरविषे प्राणादि नामवाले पांच वायुही। "अग्निवत्," अग्निहैं सोई जागते हैं॥ हे सौम्य। अब प्राणोंको अग्निकी समता कहतेहैं तिसः कों श्रवणकरो॥ ।"गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो। "यह प्रसिद्ध अपानहै सो गार्हपत्याग्निहै" अर्थात् यह जो प्रसिद्ध अपानवायुहै सोई गार्हपत्य नामवाला अग्निहै॥ प्र०॥ किसप्रकारहै॥ उ०॥ "गार्हपत्यात्प्रणीयते"। "गार्हपत्य नामवाले अग्नि, से निकलतेहैं"। हे सौम्य जैसे। अन्य अग्निके रचनेवाले गार्हपत्य नामवाले अग्निसे, नित्यके अग्निहोत्रके कालसे अन्यअग्निहोत्रके कालविषे तिस गार्हपत्य अग्निसे अन्य आहवनीय नामवाला अग्नि निकालतेहैं। तैसे जिसकरके सुषुप्तिअवस्थाको प्राप्तभये पुरुषके, गार्हपत्याग्निभावसे कहा जो अपाननाम वायु तिसके भीतरजानेसे प्राणवायु निराव-

रण होताहै तिसकारणसे ‹ मेघोंमेंसे निकसे चन्द्रमावत् , अपानवायुसे निकसेहुएवत् मुख अरु ‹ नासिकारूप द्वारसे बाहर (ऊपर) को चलताहै ‹ एतदर्थ अपानवायु गार्हपत्य अग्निके स्थानापन्नहै । अरु — । "आहवनीयः प्राणः" । ‹ प्राण ‹ आहवनीय है › — जैसे गार्हपत्याग्निसे निकसनेवाला आहवनीय अग्निहै , तैसे ही अपान ‹ वायुसे निकसने वाला प्राणवायुहै , एतदर्थ प्राण वायु आहवनीय नामवाले अग्नि स्थानापन्नहै । अरु — । "व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो" । ‹ व्यान दक्षिणाग्निहै › — व्यानवायुहै सो हृदयरूपदेशसे दक्षिणवाजुके छिद्रद्वारा निकलताहै इस ही करके सो दक्षिणदिशाका सम्बन्धीहै एतदर्थ वो दक्षिणाग्निके स्थानापन्नहै ॥ ३ ॥ ४४ ॥

---

४ ॥ हे सोम्य अब यहां इस चतुर्थवाक्य ‹ करके अग्निहोत्रके हवनका कर्त्ता ऋत्विक्‌रूप होता कहते हैं ॥ पिप्पलाद उवाच ॥ हे गार्ग्य ‹ । "यदुच्छ्वासनिश्वासावेतावाहुती समं नयतीति समानः" । ‹ इन उच्छ्वास अरु निश्वासरूप आहुतको सम प्रसन्न करताहै सो समानहै › अर्थात् जिस करके उच्छ्वास अरु निश्वास यह दोनो ‹ आहुतिहैं । क्यों कि अग्निहोत्रकी दो आहुति ‹

॥यदुच्छ्वास निश्वासावेतावाहुती ॥
॥समं नयतीति स समानः। मनो ह वाव
॥यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं य-
॥जमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥४॥४५॥

वत् सर्वदा दोनोकी संख्याकी समताहे। अरु
तिसकरके यह दोनो आहुतिरूपहैं। अरु जो
इन उच्छ्वास अरु निश्वासरूप आहुतिको अ-
ग्निहोत्रके हवनकर्त्ता होता वत्, शरीरकी स्थि
तिके निमित्त समभावसे जो वायु प्रवृत्त करता-
है, तिसकरके सो वायु दोनों आहुतिका प्रवर्त्त-
क होनेसे पूर्वोक्तिके अनुसार अग्निस्थानापन्न
हुआ२ भी होतारूपहै,— [शंका। "प्राणाग्नय"।
इस वाक्यसे सर्व प्राणोंको अग्नित्व कहाहै, तब
यहां समानवायुको होताकरके कैसे कहतेहैं॥
समाधान॥ हे सौम्य यद्यपि। "प्राणाग्नय एवै-
तस्मिन् पुरे जाग्रति"। 'पांच प्राणरूप अग्नि ही
इस पुरविषे जागते हैं' इस तीसरे वाक्यविषे।
समानवायुको भी अग्निस्थानापन्न कहाहै सो
सत्याहै, तथापि— जैसे अग्निहोत्रविषे हवन
कर्त्ता ब्राह्मण दोनों आहुतिओंको आहवनी-
य नामवाले अग्निकेप्रति समभावसे हवन कर-
ताहै, तैसे— यह समानवायु उच्छ्वास अरु

निश्वासरूप दोनो आहुतिओंकों शरीरकी स्थिति। रहनेकेअर्थ समताकरके प्रवृत्तकरेहै, एतदर्थ आहुतिका प्रवर्त्तकहोनेसे तिस समानवायुकों होता। नामसे कहतेहैं। अरु समानवायुकों होतापनेके सिद्ध भये जो अग्निपनेका कथनहै तिसका छत्रीवाले जातेहैं, इसवाक्यसे जिसकेपास छत्रीहै। तिसका अरु तिससे भिन्न दूसरेका दोनोका ग्रहणहोताहै। तैसे ही अग्निरूप अरु तिससेभीन्न। होतारूप दोनोके ग्रहणविषे यह लाक्षणिक अर्थहैं] —०॥ प्र०॥ यह होतारूपवायु कौनसाहै॥ उ०॥ सो होतारूप समान नामवाला वायुहै।। [तीनो अवस्थाओंसे रहित अरु तीनोंअवस्थामें वर्त्तमान उच्छ्वास अरु निश्वासरूप प्राणोकी अग्निहोत्रके अवयवरूपताके सम्पादनका उपासनारूप प्रयोजन नहीं, क्यों कि यहां निर्विशेष आत्माका प्रसंगहै ताते। अरु यहां तिस प्राणोंकी विधिका अभावहै ताते। किन्तु इन्द्रियां सोवेंहैं। अरु प्राण जागेहैं ऐसा कहाहै। ताते यहां त्वं पदके शोधनरूप ज्ञानकी स्तुति हीहै] एतदर्थ विद्वान् (कर्मउपासनाके समुच्चय करनेवाले) का। स्वप्न भी अग्निहोत्रका हवन ही है। ताते विद्वान्। कर्मसे रहित नही एसा माननायोग्यहै॥ अरु। "मनो ह वाव यजमानः"। मन प्रसिद्ध यजमान

है ;— स्वप्नविषे पंचप्राणरूप अग्निके जागतेहुए बाहरके करणोंकों अरु विषयोंकों लयकरके अग्निहोत्रका फल जो स्वर्ग तद्वत्, सुषुप्तिकालविषे ब्रह्मके अर्थ जानेकों इच्छाकरताहुआ मन यजमानवत् प्रसिद्ध जागताहै । अर्थात् सो मन जैसे यजमान यज्ञकी सर्वसामग्रीमें प्रधानहोता है तैसे, कार्य अरु करणोंविषे प्रधानहोनेकरके व्यवहारकरनेसे; अरु जैसे यजमान स्वर्गार्थ प्रस्थानपावताहै तैसे, ब्रह्मरूप स्वर्गके ताईं प्रस्थानको पायाहोनेसे यजमानहै। ऐसा जानना ॥ अरु— । "इष्टफलमेवोदानः"। उदान यज्ञका फलहीहै ;— उदानवायु जो उत्क्रमणमें प्रधानहै सो यज्ञका फलहीहै । काहेतें कि यज्ञके फलकी प्राप्ति उदानवायुरूप निमित्तवालीहै तातें। [अर्थ यह है कि यजमानकों मरणके अनन्तर उदानवायुरूप निमित्तवाले यज्ञादिकोंके फलकी प्राप्ति है तातें उस उदानवायुकों यज्ञोंके फलका निमित्तकारणहोनेसे, अरु कारणविषे कार्यके आरोप होनेसे उदानवायुकों इष्टफलकरके कहाहै ॥ प्र०॥ उदानवायुकों यज्ञका फलपना कैसे है ॥ उ०॥ । "स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति"। सो इस यजमानकों दिनदिनविषे ब्रह्मके अर्थ प्राप्तकरता है ; सो उदानवायु इस मन नामवाले यजमानकों

॥अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभ-॥
॥वति यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुत-॥
॥मेवार्थमनुशृणोति देशा दिगन्तरैश्च ।॥
॥प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृ-॥
॥ष्टञ्चादृष्टञ्च श्रुतञ्चाश्रुतञ्चानुभूत-॥
॥ञ्चानुभूतञ्च सर्व्वंपश्यति सर्व्वःपश्यति॥
॥ ५ ॥ ७६ ॥

स्वप्ननिरूपसे भी चलायमानकरके नित्य नित्य सुषुप्तिकालविषे अक्षर ब्रह्मरूप स्वर्गके तांई ही प्राप्तकरेहै । अर्थात् [यद्यपि दिनदिनविषे जो ब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै सो यज्ञका फल नहीं । काहेतें कि यज्ञसे रहित पुरुषकों भी तिस सुषुप्ति विषे उस ब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै तातें । तथापि । ब्रह्मकों ही सर्वयज्ञोका फलपनाहै, तातें सुषुप्तिरूपद्वारकरके तिस ब्रह्मके प्रापक उदानवायु कों इष्टफलकी प्रापकताहै, यह भावहै] एतदर्थ उदानवायु यज्ञके फलके स्थानापन्नहैं ॥ इति सिद्धम् ॥ ४ ॥ ७५ ॥

५ ॥ टीका ! "गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो" ! यह अपानवायु गार्हपत्य नामवाला अग्निहै यहांसे आरंभकरके ! "मनो ह वाव यजमान" !

मन रूप ही प्रसिद्ध यजमानहै ' इस श्रुतिपर्यन्त जो कहाहै तिसकरके विद्वान् कर्मी नहीं होता। इसप्रकार विद्वानकी स्तुतिकियाहै. ऐसा तुमने कहा सो अस्तु । परन्तु इसप्रकार तहां अग्निहोत्रादि कर्मोंकी प्रतीतिसे उदानवायुकों यज्ञके फल स्थानापन्न कहाहै. तिसकरकेतो इस यज्ञका फलपना नहीहै, क्यों कि तहां कर्मकी अप्रतीतिहै ताते ॥ समाधान ॥ यहां यह भावहै कि, श्रोत्रादि इन्द्रियां स्वप्नविषे सोवें (उपरामहोवें) हैं अरु प्राणही जागतेहैं, इस स्वरूपवाली विद्यारूप विद्वत्ताहै तिस विद्वत्ताकी यहा स्तुतिकरतेहैं । अरु इस उक्तविद्याकों, जागरण जो है सो श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियोंका धर्म है अरु शरीरका रक्षण करना प्राणका धर्महै ताते इनमें आत्माका धर्म कोई नहीं इसप्रकारके त्वंपदके, विवेकरूपहोनेसे उक्त विद्याकरके युक्त विद्वान्की स्तुतिकरनेकी योग्यताका संभव है । अरु एतदर्थ ही प्राणका जो जागरणहै सो विद्वान् अरु अविद्वान् दोनोंकों समानही है तब अविद्वान्कों त्यागके विद्वान्की ही स्तुति कैसे है, ऐसी जो रही शंका तिसका भी अभाव भया, क्यों कि अविद्वानकों उक्त विद्याके विवेकका अभावहै ताते, विद्वान्की ही स्तुतिहै]

हे सौम्य इसप्रकार विद्वान्कों श्रोत्रादि इन्द्रियरूप करणोंके उपरामकालसे आरंभकरिके यावत् पर्यन्त सुषुप्तिसे उत्थानकों प्राप्तहोताहै तावत्पर्यन्त॰ सर्व यज्ञके फलके अनुभवहोनेसे अविद्वानोंवत् अनर्थके हेतु नहीं। इसप्रकार यहां विद्वत्ताकी॰ स्तुतिकरतेहैं। अरु जिसकरके केवल विद्वानके ही श्रोत्रादि इन्द्रियां सोवेहैं, अथवा प्राणरूप पांच अग्नि जागतेहैं, अथवा जाग्रत अरु स्वप्नविषे मन अपनी स्वतंत्रताकों अनुभवकरताहुआ नित्य नित्य सुषुप्तिकों प्राप्तहोताहै ऐसा नहीं ताते॰ विद्वानके ही इन्द्रियादि उपरामादि होतेहै इस॰ प्रकारका विधानकरना योग्य नहीं, किन्तु सर्व॰ प्राणधारियोंकों क्रमसे जाग्रत स्वप्न अरु सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाविषे जो गमनहै सो समान ही है। एतदर्थ यह विद्वान्की स्तुति ही संभवेहै ॥ हे सौम्य पूर्वजो गार्ग्यमुनिने तीसरा प्रश्न कियाथाकी ।"कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति"।'कौनसा यह देव स्वप्नोंकों देखताहै' तिसका उत्तर पिप्पलादमुनि कहतेहैं कि हे गार्ग्य॰ ।"अत्रैष देवः स्वप्ने महीमानमनुभवति"। 'यहां यह देव स्वप्नविषे महीमाकों अनुभव करेहै'॰ अर्थात् प्रथम श्रोत्रादि इन्द्रियोंके उपरामभये अरु देहकी रक्षार्थ प्राणादि पांचवायुके जागने

हुए सुषुप्तिकी प्राप्तिसे पूर्व इस सन्धिमें यह देव। जैसे सूर्य्य अपनी किरणको अपनेविषे लयकरताहै तैसे, अपने स्वरूपविषे लय कियेहैं चक्षुरादि करण जिसने, इसप्रकार हुआ स्वप्नविषे विषय अरु विषयीरूप अनेकवस्तुओंको आत्म (अपने) भावकी प्राप्तिरूप महिमाको अनुभव करताहै ॥ ५॥ शंका ॥ महिमाके अनुभवकरनेविषे अनुभवकर्त्ताको करण जो है सो मनहै एतदर्थ सो मन स्वतन्त्रहोनेसे कैसे अनुभव करताहै ॥ समाधान॥ हे सोम्य क्षेत्रज्ञ आत्मरूप जो देव है सो स्वतन्त्र हुआ भी महिमाका अनुभवकरताहै यह दोष नहीं है। क्यों कि क्षेत्रज्ञका जो स्वतन्त्रपनाहै सो मनरूप उपाधिका कियाहै। अरु परमार्थसे तो स्वयं क्षेत्रज्ञ न सोवताहै न जागताहै तातें तिसक्षेत्रज्ञका जो जागना अरु सोवनाहै सो मनरूप उपाधिकृतहीहै ॥ तथाच । "स धीः स्वप्नो भूत्वा ध्यायतीवेत्यादि"। बुद्धिसहितहुआ आत्मा, स्वप्नरूपहोके ध्यावतेहुएवत् होताहै इत्यादि। बृहदारण्यक उपनिषद् विषे कहाहै। एतदर्थ देव शब्दकरके उक्त मनको विभूतके अनुभव करनेविषे स्वतन्त्रपनेका वचन युक्त ही है ॥ हे सौम्य कोईएक वादी कहते हैं कि क्षेत्रज्ञको स्वप्नकालविषे। मनरूप उपाधिकरके सहित हुए तिस क्षेत्रज्ञको

स्वयंज्योतिपनेकी प्रति पादक श्रुति बाधकों पावतीहै, सो बने नहीं। क्यों कि उन वादी पुरुषोंकों श्रुत्यर्थके अज्ञानसे भयी भ्रान्तिहै। अरु जिससे मन आदिक उपाधिकरके जन्य जो स्वयं ज्योतिपनेआदिकाव्यवहार है सो भी मोक्षपर्यन्त सर्व अविद्या (अविज्ञान) का विषय ही है। क्यों कि। "यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येन्मात्रं संसर्गस्तस्य भवति"। 'जहां वा अन्य वत्होय तहां अन्य अन्यकों देखे अरु इस आत्माकों विषयोंसे असम्बन्धहोताहै' अरु "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येदित्यादि श्रुतिभ्यः"। 'जहां तो इस (पुरुष) कों सर्व आत्माही होता भया तहां किसकरके किसकों देखे' इत्यादिक बृहदारण्य उपनिषद्के छठे अध्यायकी श्रुतिसे सिद्धहै ताते उक्त जो शंकाहै सो मंद ब्रह्मवेत्ताओंकी ही करीहुयीहै यथार्थ एकात्मवेत्ताकी नहीं,॥ शंका ॥ हे भगवन् जैसा आप कहते हो तैसा होनेसे। "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः"। 'यहां यह पुरुष स्वयंज्योतिहै' इस श्रुतिविषे। "अत्र"। 'यहां' ऐसा जो विशेषणहै सो व्यर्थ होवेगा ॥ समाधान ॥ हे सोम्य हे वादी यह तुमकरके अत्यही कहते हैं जिसकरके। "य एषोऽन्तर्हृदय आकाश तस्मिञ्छेते-

ति"। 'जो यह अन्तर हृदयविषे आकाशहै तिसविषे (आत्मा) रहताहै' इस श्रुतिकरके अन्तरहृदयके परिच्छेदके भये अवश्यकरके आत्माका स्वयंज्योतिपना बाधकों पावेगा ॥ अरु जो कहे कि यद्यपि यह उक्त दोष होगा, यह आपका कहना सत्य ही है, तथापि स्वप्नविषे आत्माकों केवल (मनके अप्रभाव युक्त) पनेसे स्वयंज्योति होनेकरके तिस आत्माका आधा बोझ (प्रतिबन्धक) दूर भया अरु [अवशेष रहा जो आत्मा तिसका बोध सुषुप्तिविषे होगा यह तेरा अभिप्रायहै] सो कहना बने नहीं। क्यो कि वहां (सुषुप्तिविषे) भी "पुरीतति शेते ति"। 'पुरीतति नामवाली नाडीविषे रहताहै' इस श्रुतिकरके पुरीतति नामवाली नाडियोका सम्बन्ध रहताहै ताते ॥ अरु जो ऐसा कहे कि वहां स्वप्नमें भी पुरुषकों स्वयंज्योति होनेसे जब आधे बोजके दूरहोनेका अभिप्राय मिथ्याहीहै ॥ तब "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति"। 'यहां यह पुरुष स्वयंज्योति होताहै' यह कहना कैसे बनेगा। अरु जो कहो कि अन्य प्रकरणान्तर रहनेसे यह श्रुति अन्य श्रुतिकी अपेक्षासे रहतीहै सो भी बने नहीं। क्यों कि सर्व श्रुतियोंके अर्थकी जो एकताहै सोई इच्छितहै ताते। अरु सर्व वेदान्तशास्त्रोंका अर्थरूप एकही आत्मा

आचार्यकरके जनावनेकों अरु जिज्ञासुयोंकरके जाननेकों इच्छितहै। एतदर्थ श्रुतिकों यथार्थतत्व की प्रकाशक होनेकरके स्वप्नविषे आत्माके स्वयंज्योतिपनेका संभव कहनेकों युक्तहै। ऐसे वादीने कहा ॥ तब सिद्धान्ति कहेहैं कि हे वादी जब तूं इसप्रकार जानताहै तब अपने सर्व अभिमानकों त्यागके इस बृहदारण्यकी श्रुतिका अर्थ श्रवणकर, क्यों कि अभिमानके होते तौ सौ वर्ष पर्यन्त भी अपनेकों पंडितमाननेवाले पुरुषोंकरके श्रुतिका अर्थ जाननेकों शक्य नहीं ॥ ताते यहां श्रुतिका यह अर्थहै कि जैसे हृदयाकाश विषे अरु पुरीतति नामवाली नाड़ियों विषे स्वप्नकों प्राप्तहुए आत्माका उन स्थान अरु तिनके धर्मों से सम्बन्धका अभावहैं, ताते आत्मा उन्होंकरके (चन्द्रशाखा न्याय प्रमाण) विवेचनकरके देखावनेकों शक्यहोताहै। एतदर्थ आत्माका स्वयंज्योतिपना बाधकों पावता नहीं। इसप्रकार अविद्या अरु काम अरु कर्मरूप निमित्तोंसे उद्भवताकों प्राप्तभयी जो वासना तिस वासनावाले मनाविषे कर्मरूप निमित्तवाली वासनाभय अविद्यासे अन्यकों अन्यवस्तुवत् देखनेवाले, अरु समस्त कार्य अरु करणसे विवेचनकियेहुएदृष्टाकों दर्पणरूप वासनासे पृथक् होनेकरके तिसका स्वयं-

ज्योतिपना, नित्य गर्वित नैयायिकोंसे भी निवारण करनेकों शक्य नहीं। ताते करणोंके मनविषे लीनहुए अरु मनके अलीनहुए मनोमय देव स्वप्नोंकों देखताहै। यह आचार्य (पिप्पलाद) ने श्रेष्ठ कहाहै ॥ प्र० ॥ हे प्रभो कैसे महिमाकों अनुभवकरताहै ॥ उ० ॥ हे सौम्य। "यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थ मनुशृणोति"। ‘ जिसकों देखाहै (तिसकों) देखेहुएवत् मानताहै (अरु) सुने अर्थकों पीछेसुनेहुएवत् मानताहै ’ अर्थात् जिस मित्र वा पुत्रादिकोंकों पूर्व देखताभयाहै तिनकी वासनाकरके युक्तभया, पुत्र या मित्रादिकोंकी वासनासे उत्पन्नहुए दृष्टवस्तुकों पुत्र अरु मित्रवत् अविद्याकरके देखेहुएवत् मानताहै। तिस ही प्रकार जो अर्थ सुनाहै तिस ही सुने अर्थकों तिसकी वासनावश पीछे सुनेहुएवत् मानताहै। अरु०—। "देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति"। ‘ देशसे अरु दिशान्तरसे वारंवार अनुभवकियेकों अनुभवकरताहै ’ —नदीकेतट आदि अन्य देशोंसे अरु पूर्वादि अन्य दिशाओंसे वारंवार अनुभवकिया जो वस्तु तिनकों अविद्याकरके अनेकदिनोविषे वर्त्तमान अनेकस्वप्नविषे अनुभवकरताहै। अरु०—। "दृष्टञ्चादृष्टञ्च श्रुतञ्चाश्रुतञ्चानुभूतञ्चानुभूतञ्च सर्वं पश्यति सर्वः

पश्यति"। देखे अरु न देखे, सुने अरु न सुने अनुभवकिये अरु न अनुभवकिये सर्वको देखताहै सर्वहुआ देखताहै ;—जैसे ही अन्य जन्मविषे देखे अरु इस जन्मविषे न देखे वस्तुकों अरु तैसे ही अन्य जन्मविषे सुने अरु इस जन्मविषे न सुने वस्तुकों अरु तैसे ही अन्य जन्मविषे मनकरकेही अनुभवकिये अरु इस जन्मविषे केवल मनसे न अनुभवकिये अर्थात् जलादि सत्यरूप अरु मरीचिजल आदिक असत्यरूप, किन्तु बहुतकहनेसें क्याहै, इन सर्व वस्तुकों जो देखताहै सो सर्व मनकी वासनारूप उपाधिवालाहुआ देखताहै ॥ इस प्रकार सर्व करणरूप मनोमयदेव स्वप्नोंको देखताहै ॥ इतिसिद्धम् ॥ ५ ॥ ४७ ॥

६॥ हे सौम्य अब गार्ग्यमुनिका जो चतुर्थ प्रश्नहै कि, यह सुख किसकों होताहै, तिसका उत्तर जो पिप्पलादमुनिने कहाहै तिसकों भी श्रवण करो ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे गार्ग्य ! "स यदा तेजसाऽभिभूतो भवति"। सो जिसकालविषे तेजकरके पराभवहोताहै ; अर्थात् सो मनरूपदेव जिसकालविषे पित्तानामवाले सूर्यके तेजकरके नाडीरूप सय्याविषे सर्वओरसे पराभवकों प्राप्तहोताहै। अर्थात्, वासनाके उद्भवके द्वाररूप स्वप्नभोगके

॥स यदा तेजसाऽभिभूतो भवति ॥
॥अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैत-।
॥स्मिञ्छरीरे एतत्सुखं भवति ॥६॥४७॥

दाता जे कर्म तिनके तिरस्कारकरके युक्त होताहै तब इन्द्रियों सहित मनके वासनारूप किरण हृदय विषे लीन होतेहैं। तब मन वनके अग्निवत् सामान्यज्ञान, अर्थात् चैतन्य, रूपताकरके सम्पूर्ण शरीरविषे व्याप्तहोके स्थित होताहै, तब सुषुप्तिकों प्राप्तहोताहै, तब— ।"अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यति 'यहां यह देव स्वप्नोंको नहीं देखता' —तिस कालविषे मननामवाला देव स्वप्नोंको देखता नहीं क्यों कि देखनेके जे द्वारहैं सो तेजकरके निरोधकों पावतेहैं। अरु—।"अथ तदैतस्मिञ्छरीरे एतत् सुखं भवति"। 'पीछे तब इस शरीरविषे यह सुख होताहै' —अर्थात् जो बाधरहित सामान्यरूपसे शरीरविषे व्यापक प्रसन्न ज्ञानरूप स्वरूपसुखहै सो यह अर्थहै ॥ ६ ॥ ४७ ॥

७॥हे सौम्य [कहे प्रकार इस पदवाक्य करके आनन्दमयकोशप्राधान्यका वाच्य अप्रत्यक्ष अरु मन आदिकोंकी वासनावाला ज्ञान, सुषुप्तिका धर्मीहै, इसप्रकार गार्ग्यमुनिके "कस्यैतत् सुखं भवति"।

॥स यथा सोम्य वयांसि वासो वृक्षं॥
॥सम्प्रतिष्ठन्ते । एवं ह वै तत्सर्व्वं पर आ-॥
॥त्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ७ ॥ ५८ ॥

किसकों यह सुख होताहै' इस चतुर्थ प्रश्नका उत्तर पिप्पलाद मुनिने कहा ॥ अब इस सातवें वाक्यकरके गार्ग्यमुनिके ["कस्मिन्नु सर्व्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति"] इस पंचम प्रश्नका उत्तर, विवेककी सुगमतासे तुरीय स्वरूपकों विवेचनकरके कहतेहैं] ॥ इसकालविषे अविद्या अरु काम अरु कर्मरूप कारणसे भये जो कार्य अरु करण सो निवृत्तहोतेहैं । अरु तिनके निवृत्तहुए उपाधियोंसे विपरीत भासमान जो आत्मा स्वरूप सो अद्वैत एक शिव (सुखरूप) प्रगट होताहै । एतदर्थ इस ही सुषुप्ति अवस्थाकों पृथिवी आदिक भूत अरु अविद्यान्वित तिनकी मात्राके विवेककरिके अक्षर ब्रह्मविषे प्रवेशसे देखावनेकों दृष्टान्त कहतेहैं । "स यथा सोम्य वयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते"। ' हे सोम्य जैसे पक्षी वासार्थ वृक्षकेताईं जातेहैं ' अर्थात् पक्षी जो हैं सो निवासकरनेके अर्थ वृक्षप्रति जातेहैं ॥ तैसे यह दृष्टान्तहै — । "एवं ह वै तत्सर्व्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते"। ' ऐसे प्रसिद्ध सो सर्व परमात्माविषे जाताहै ' — इस ही प्रकार प्रसिद्ध सो जो आगे कहैंगे सर्व जगत् अविनाशीरूप

॥पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चा- ॥
॥पोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायु-॥
॥श्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाश मात्रा च॥
॥चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्रा-
॥णञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्व-
॥क् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च॥
॥हस्तौ चादातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च॥
॥पायुश्च विसर्जयितव्यञ्च पादौ च गन्तव्य-
॥ञ्च मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्च बोधव्यञ्चा-
॥हङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्य-
॥ञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च॥
॥ विधारयितव्यञ्च ॥ ८ ॥ ४९ ॥

परमात्माविषे लय होताहै ॥ ७ ॥ ४८ ॥

८ ॥ हे भगवन् जो सर्व जगत् परमात्माविषे जाताहै सो कौन है ॥ ३० ॥ हे सोम्य इसकों भी श्रवणकरो । "पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा"। पृथिवी अरु पृथिवीकी मात्रा (गन्ध)। पुनः जल अरु जलकी मात्रा (रस)। पुनः तेज अरु तेजकी मात्रा (रूप)। पुनः वायु अरु वायुकी मात्रा

(स्पर्श)। पुनः आकाश अरु आकाशकी मात्रा (शब्द)। अर्थात् गंधादि तनमात्रारूप अपंचीकृत पंच महाभूत सूक्ष्म। अरु पृथिव्यादि पंचीकृत महाभूत स्थूल। अरु-। "चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च हस्तौचादातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च पायुश्च विसर्जयितव्यञ्च पादौ च गंतव्यञ्च"। ‘चक्षु अरु देखनेयोग्यवस्तु, श्रोत्र अरु सुननेयोग्य वस्तु, पुनः घ्राण अरु गंधलेनेयोग्यवस्तु, पुनः रसना अरु रसलेनेयोग्य वस्तु, पुनः त्वचा अरु स्पर्शकरनेयोग्य वस्तु। वाचा अरु बोलनेयोग्य वस्तु, पुनः दो हाथ अरु लेने देनेयोग्य वस्तु, पुनः उपस्थ (लिंग) अरु आनन्ददेनेयोग्य वस्तु, पुनः पायु (गुदा) अरु त्यागनेयोग्यवस्तु पुनः दो पाद अरु चलनेयोग्य वस्तु’-अर्थात् यह ज्ञानेन्द्रियां अरु कर्मेन्द्रियां बाह्यकरण अरु तिनके विषय कहे। अरु। "मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्च बोधव्यञ्चाहङ्कारश्चाहङ्कर्त्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्यञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च ८"। ‘मन अरु मननकरनेयोग्य वस्तु, पुनः बुद्धि अरु जाननेयोग्य वस्तु, पुनः अहंकार अरु अहंकरनेयोग्य

वस्तु, पुनः चित्त अरु चिंतनकरनेयोग्य वस्तु, पुनः प्रकाश अरु प्रकाशनेयोग्य वस्तु, पुनः प्राण अरु धारणकरनेयोग्य वस्तु ॥ अर्थात् उक्त मन अरु मननकरनेयोग्यवस्तुरूप तिसका विषय, अरु निश्चयआत्मकरूप बुद्धि अरु जाननेयोग्य वस्तुरूप तिसका विषय, अरु अभिमानात्मक अन्तःकरणरूप अहंकार अरु अभिमानकरनेयोग्यवस्तुरूप तिसका विषय, अरु चेतनावृत्त्यात्मक अन्तःकरणरूप चित्त अरु चिन्तनकरनेयोग्यवस्तुरूप तिसका विषय, अरु त्वचाइन्द्रियसे भिन्न प्रकाशयुक्त चर्मरूप तेज अरु तिससे प्रकाशकरनेयोग्य सोई तेजकारूपवस्तु तिसका विषय। अरु जिसकों सूत्रात्मा कहतेहैं ऐसा जो प्राण सो अरु तिस प्राण सूत्रात्माकरके धारणकरनेयोग्य सर्व कार्य करणका संघातरूप यह पर अर्थात् अपनेसे इतर के अर्थ होनेकरके मिश्रितहुआ नामरूपात्मक जगत् तिसका उपाधिभूत इतना ही सर्वहै ॥ ८ ॥ ५६॥

९॥ हे सौम्य यह जो तुमकों कहा इस सर्वसे पर जो जगत्का कर्त्ता आत्मस्वरूपहै सो सूर्य्यके अर्थात् जलादिगत सूर्य्यके प्रतिविम्ब आदिकोंवत् भोक्तापने अरु कर्त्तापने करके इसविषे प्रवेशकों पायाहै इतरर्थ। "एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता

॥एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता ॥
॥रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा
॥पुरुषः। स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रति-
॥ष्ठते ॥ ९ ॥ ५० ॥

रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः"। "यह ही देखनेवाला स्पर्शकरनेवाला सुननेवाला स्वादकरनेवाला मननकरनेवाला जाननेवाला करनेवाला अरु विज्ञानात्मा पुरुषहै" अर्थात् जिसकरके जानतेहैं ऐसा जो करणरूप बुद्धिआदिक विज्ञानहै सो यह नहीं, किन्तु यह तो जो जानता है ऐसा कर्त्ता अरु कारकरूप विज्ञानहै तिस विज्ञानरूप स्वभाववालाहै अर्थात् विज्ञातास्वभाववालाहै एतदर्थ विज्ञानात्माकहतेहै। अरु तिस हीको कार्य अरु करणके संघातरूप उक्त उपाधियोंविषे पूर्ण होनेसे पुरुषकहतेहैं। "स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते"। "सो अक्षररूप परमात्माविषे लीन होताहै सो पुरुष जैसे जलादि आधारके प्रोषणहुए सूर्यादिकोंके प्रतिबिम्ब सूर्य्यादिकोंविषे प्रवेशको पावतेहैं तैसे ही अक्षररूप परमात्माविषे लीन होताहै॥९॥

१०॥ हे सोम्य अब तिस जीवात्मा अरु परमात्माकी अभेदताके जाननेवालेको जो फल

॥परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै॥
॥तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं॥
॥वेदयते यस्तु सोम्य। स सर्व्वज्ञः सर्व्वो॥
॥भवति तदेषश्लोकः॥ १० ॥ ५१॥

प्राप्तिरूप फल होताहै सो कहतेहैं। "यस्तु सोम्य।
हे सोम्य, जो"। "स यो ह वै"। कोई कहीं सर्व
एषणासे रहितहुआ। "तदच्छायमशरीरमलो-
हितं शुभ्रमक्षरं वेदयते"। तिस अछाय अशरी
र अलोहित शुद्ध अक्षरकों जानताहै अर्थात्
तिस अज्ञानरहित अरु शरीररहित अरु लोहिता-
दि गुणरहित [अर्थात् अज्ञानादि तीन विशेषण
से रहित कहनेसे कारण अरु सूक्ष्म अरु स्थूल
इन तीनों शरीरोंका निषेधहै. तिसकरके अवस्थाती-
नोंका भी निषेधहोताहै, तिस निषेधसे आत्माका
जो तीनों अवस्थासे रहितपनाहै तिसका अनुवाद
करतेहैं] अरु नामरूपादि सर्व उपाधिके शरीरसे
रहित, अरु रक्तादि द्रव्यवत् रक्तादि सर्वगुण रहित
है। हे सौम्य जिसकरके ऐसाहै इसहीसे शुद्धहै अरु
सर्व विशेषणोंसे रहितहै ताते अक्षर, सत्य पुरुष
नामवाला प्राणरहित मनका अविषय शिवरूप शा
न्त बाहर भीतरकी कल्पनासे रहित अजन्मा, कों
जानताहै। "परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स"। सो प-

॥विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्व्वैः प्राणा॥
॥भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र । तदक्षरं वेद-॥
॥यते यस्तु सौम्य स सर्व्वज्ञः सर्व्वमेवावि-
॥वेशेति ॥ ११ ॥ ५२ ॥

॥इतिश्री प्रश्नोपनिषदि चतुर्थ प्रश्नः समाप्तः॥

रम अक्षरको ही प्राप्त होताहै ;—सो पुरुष परब्रह्म
रूप अक्षरको ही पावताहै "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति"। ॥
अरु जो सर्वकात्यागीहुआ जानताहै ;—। "स सर्व्वज्ञः
सर्वो भवति तदेषश्लोकः १०"। ः सो सर्वज्ञहै सर्व
होताहै तिसविषे यह श्लोक (प्रमाण) है ;—सो ॥
ज्ञानवान सर्वज्ञ होताहै । अर्थात् तिस अक्षरके
जाननेवालेसे अज्ञात कुछ भी संभवता नहीं ॥ ॥
॥ शंका ॥ सर्व्वात्मभावको ज्ञानकरके जन्यताके
होनेसे तिस सर्व्वात्मभावका अनित्यपना होताहै।
॥ समाधान ॥ पूर्व अविद्याकरके असर्वज्ञथा प-
श्चात् आचार्यके उपदेशसे विद्याकरके अविद्या
के अभावभये सर्वरूपहोताहै उपजता नहीं, अ-
रु तिस ही अर्थविषे यह अग्रिम (आगे) कहने
का वाक्यरूप श्लोक (वेदकामंत्र) प्रमाणहै॥ १०॥

११॥ हे सौम्य पिप्पलादमुनि कहतेहैं कि। "सौ-
म्य"। ः हे प्रियदर्शन हे गार्ग्य॥ "सह देवैश्च सर्व्वैः

प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र"। 'सर्व देवताओं
करके (सहित) इन्द्रिय (अरु) भूत जिसविषे प्रवे-
शकों पावतेहैं' अर्थात् समस्त अपने अधिष्ठाता दे-
वताओंकरके सहित चक्षुरादि इन्द्रिय अरु पृथिव्या
दि भूत जिस अक्षरविषे प्रवेशकों पावतेहैं। "तद-
क्षरं यस्तु"। 'तिस अक्षरकों जो'। "विज्ञानात्मा"।
'जीव' अर्थात् — तिस सर्वके आश्रयरूप अक्षर
कों जो उक्त अर्थका जिज्ञासु (ग्राहक) जीवात्मा
"वेदयते"। 'जानताहै'। "स सर्व्वज्ञः सर्व्वमेवा विवेशे
ति"। 'सो सर्वज्ञहुआ सर्वकेताईं ही प्रवेशकों पाव-
ताहै' अर्थात् सर्वज्ञ सर्वात्मा ही होताहै ॥ ११ ॥ ५२॥

॥ इति प्रश्नोपनिषद्गत चतुर्थ प्रश्न ॥

॥ भाषा टीका ॥

॥ समाप्त ॥

॥ हरिः ॥

॥ ॐ ॥

॥ तत् सत् ब्रह्म ॥

॥ ४ ॥

॥अथ प्रश्नोपनिषद्गत पंचम प्रश्नः॥

॥अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ। स॥
॥यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकार-
॥मभिध्यायीत कतमं वाव स तेन लोकं॥
॥जयतीति॥ १ ॥ ५३ ॥

॥अथ प्रश्नोपनिषद्गत पंचमप्रश्न भाषाटीका॥
॥प्रारभ्यते॥

१॥हे सौम्य हे प्रियदर्शन [इसप्रकार चतुर्थ प्रश्नविषे कहेप्रमाण उत्तमाधिकारीकों पदार्थके शोधनपूर्वक वाक्यार्थके ज्ञानसे अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति कहके अब इसविषे मध्यमाधिकारी मन्द वैराग्यवाले अरु "ॐ" ऐसे आत्माकों ध्यानकरनेवाले॰ 'प्रणवो धनुः' ॐकार धनुषहै' इत्यादि मुंडक उपनिषदके मंत्रसे सूचितकिया जो ब्रह्मलोककी प्राप्ति तिसद्वारा क्रमकरके अक्षरब्रह्मकी प्राप्तिकेअर्थ ॐ कारकी उपासना कहनेकों पंचमप्रश्नकों प्रकट करतेहैं] अब गार्ग्यमुनिके प्रश्नके निर्णय भये पश्चात् परब्रह्म अरु अपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होनेकरके ॐ कारकी उपासनाके करनेकी इच्छासे पंचम प्रश्नका प्रारंभकरतेहैं। "अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ"। 'तिसके पश्चात् इसकों शिबिकापुत्र सत्यकाम पूछताभया' अर्थात् गार्ग्यमुनिके पश्चात् इस निर्णय

कर्त्ता पिप्पलादमुनिकों शिविऋषिका पुत्र सत्यकाम नामा मुनि पूछताभया ॥ सत्यकाम उवाच ॥ ।"स यो हवै तद्भगवन्मनुष्येषु"। (हे भगवन्. मनुष्योंके मध्य सो अद्भुतवत् है सो जो (कोईएक मनुष्य); ।"प्रायणान्तमोंकार मभिध्यायीत"। (मरणपर्यन्त ॐकारकों सन्मुखध्यानकरे; अर्थात् जो कोई एक मनुष्य शरीरके पातहोने पर्यन्त इस ॐकारकों सन्मुख होनेकरके चिन्तनकरे। अर्थात् जो बाह्यके विषयोंसे निवृत्तकिये इन्द्रियों वाला, अरु भक्तिकरके आरोपितकियाहै ब्रह्मभाव जिसविषे ऐसे ॐकारविषे एकाग्रचित्तवाला अरु उच्छेद (विनाश) रहित, आत्माकार वृत्तिवाला अरु अनात्माकारवृत्तिरूप अन्तराय (विविधान) से रहित हुआ. जैसे वायुकरके रहित स्थानविषे स्थित जो दीपक तिस दीपककी शिखाके समान निश्चल चित्तवालाहोय, अरु सत्यभाषण ब्रह्मचर्य अहिंसा अपरिग्रह (दान न लेना) त्याग (दान देना) सन्यास (संग्रहका त्याग) शौच (पवित्रता) संतोष निष्कपटभाव; इत्यादि अनेक यम नियमसे अनुग्रह कों पायाहोय, सो पुरुष आश्चर्यवत्है। "कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति"। (सो तिससे कौनसे लोककों पावताहै; हे भगवन् सो इस प्रकार यावत्पर्यन्त जीवतरहे तावत्पर्यन्त नियम-

॥तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम॥
॥परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वा-॥
॥नेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति॥ २॥ ५४॥

की धारणावाला पुरुष उपासना ग्रुरु कर्मोंकरके॥
जो पावनेयोग्य ग्रनेक लोकहैं तिनमेंसे तिस ॐ॥
कारके ग्रभिध्यान करनेसे कौनसे लोककों पाव-
नाहै ॥ १॥ ५३॥

अ॥ हे सौम्य इसप्रकार जब सत्यकाममुनिने॰
प्रश्नकीया तब०— ।"तस्मै स होवाच"। ‹तिसको सो
कहताभया ›→ तिस प्रश्नकरनेवाले सत्यकामनाम॥
क ग्रपने शिष्यप्रति सो पिप्पलादमुनि नामा ग्रा-
चार्य, स्पष्ट कहता भया [इस उपासनाकों ग्रोंकार
के ग्रभिध्यानरूपहोनेसे दहराकाशादिकोंकी उपास॰
नावत् ग्रपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधनहीहै, ग्रथवा॰
परब्रह्मकी प्राप्तिका भी साधनहै। इसप्रकारसे प्रश्न
करनेवाले शिष्यके ग्रभिप्रायके जाननेवाले सर्वज्ञ
पिप्पलादमुनि कहतेभये कि यह ग्रोंकार ग्रपर-
ब्रह्मके ग्रालम्बन होनेसे जब तैसाध्यानकरिये तब॥
ग्रपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधनहोताहै ग्रुरु परब्रह्मके
ग्रालम्बन होनेसे जब ॐकारका तैसा ध्यानकरिये
तबसो क्रमसे परब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होताहै०

।"एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनंपरम्। एतदालम्बनं
ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते"।-. ऐसा उत्तर कहतेहैं,
॥पिप्पलादउवाच॥ ।"एतद्वै सत्यकाम परञ्चापर-
ञ्च ब्रह्म यदोंकारः"। हे सत्यकाम यह जो परब्रह्म
अरु अपरब्रह्म है सो ओंकार हीहैं; अर्थात् हे स-
त्यकाम यह जो सत्य अक्षर पुरुष इत्यादि नामोंक-
रके परब्रह्महै अरु सर्वसे प्रथम उत्पन्नभया प्राण
(सूत्रात्मा) नामकरके अपरब्रह्महै सो उभयप्रकार
का ॐ कारही है। क्योंकि ॐ काररूप प्रतीक
वालाहै नाते ॥ शंका ॥ ब्रह्म अरु ॐकारके भेद
से तिनकी एकता कैसे बनें ॥ समाधान ॥ तिनकी
एकता आरोपसे बनतीहै। यहां यह भाव है कि
इस ब्रह्म अरु ॐकारके एकअर्थविषे तात्पर्यरू-
प सामानाधिकरणसे ओंकारका प्रतीकपना उपदे-
श करतेहैं। जैसे सालग्रामादि पाषाणविषे विष्णु
आदिक बुद्धि करनी तैसे,। जिस औरविषे औ-
रकी बुद्धि करीये सो तिसका प्रतीक कहतेहैं। य-
हां ब्रह्मसे इतर जो वर्णात्मक ॐकार तिसविषे
ब्रह्मकी बुद्धि करतेहैं एतदर्थ ॐकार ब्रह्मका प्रतीक
है। जैसे विष्णुआदिकोंके सालग्रामादि,] अरु
जिसकरके सर्व धर्मके भेदसेरहित परमात्मा प्रत्यक्ष
आदि प्रमाणोंकरके साक्षात् बोध करनेके अयो-
ग्यहै, एतदर्थ इन्द्रियोंके अगोचरहोनेसे केवल

करणरहित मनसे भी जाननेकों शक्य नहीं, किन्तु ।जैसे सालग्रामादि विषे आरोपित करते हैं विष्णु। भाव तैसे, भक्तिकरके आरोपकिये ब्रह्मभाववाले ॐकारके सम्यक ध्यानकरनेवाले पुरुषकों सो। जाननेमें आवताहै, इसविषे शास्त्रका प्रमाणहै। ताते। अरु इस ही प्रकार अपरब्रह्म भी जाननेमें आवताहै। एतदर्थ जो पर अरु अपररूप ब्रह्महै। सो ॐकारहै। इसप्रकारका आरोपकरतेहै—। "तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति"। ताते ऐसे जाननेवाला इस ध्यानसे ही दोनोंमेंसे एककोंपावताहै। — एतदर्थ इसप्रकार जाननेवाला विद्वान् पुरुष इस ॐकारके ध्यानरूप, आत्माकी प्राप्तिके साधनरूप साधनके आश्रयसे ही परब्रह्म अरु अपरब्रह्म इनदोनोंमेंसे एककों पावताहै ॥ कि जिसकी प्राप्तिकी इच्छासे करताहै ॥ २ ॥ ५४ ॥

३॥हे सौम्य जो पुरुष, ब्रह्मका समीपवर्त्ति श्रेष्ठ आलम्बन अर्थात् उपकार साधक अरु। अकारआदिक तीन मात्रावाला जो ॐकार सो। उपासनाकरनेके योग्यहै इसप्रकार यद्यपि ओंकारकी अकारादि सर्व मात्राके विभागका यथार्थ। जाननेवाला न होय, किन्तु ओंकारकी एक अकारमात्रा उपासनाकरनेयोग्यहै इसप्रकार जानताहै।

॥ स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स ते-॥
॥नैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्प-॥
॥द्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स ॥
॥तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो॥
॥महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥ ५५ ॥

तथापि सो दुर्गतिकों प्राप्तहोता नहीं, किन्तु एकमात्रारूप ही ॐकारके ध्यानके प्रभावसे इसलोकविषे श्रेष्ठगतिकों ही पावताहै। यह इस तृतीय वाक्यका तात्पर्यहै, अब इसके अक्षरार्थकों श्रवणकरो हे सौम्य । "स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते"।ःसो जब एकमात्रारूपकों ध्यानकरताहै सो तिससे ही भलीप्रकार जानताहुआ शिघ्र ही जगत्विषे पावताहै; अर्थात् इसप्रकार सो जब एकमात्राके ही विभागका जाननेवाला सर्वदा एकमात्रारूप ओंकारकों ध्यान करताहै सो पुरुष एकमात्रापनेकरके युक्त ओंकारके ध्यानसे ही तिसमात्राके सम्यक् प्रकार बोधवान्हुआ शिघ्र ही जगत् (पृथिवी) विषे जन्म पावताहै। अरु० । "तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते"। ःतिसकों मनुष्य शरीरकों ऋग्वेद प्राप्तकरेहै;—तहां पृथिवीविषे अनेकजन्महैं तिनविषे तिस ओंकारके साधककों मनुष्य लोक

(शरीर) के अर्थ ही ऋग्वेदरूप ["स ऋग्वेद इति" श्रुते] (अकार ऋग्वेदहै)। इस श्रुतिसे अकाररूप ओंकारकी प्रथम मात्राको ऋग्वेदरूपताहै ॥ ओंकारकी प्रथम एकमात्रा जो है सो प्राप्तकरेहै। अरु — ["स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ३"॥] (सो तिसविषे तपसे ॥ ब्रह्मचर्यसे श्रद्धासे सम्पन्नहुआ महिमाको अनुभव करताहै)। —सो साधक तिस प्रथम मात्रारूप ॐकारके ध्यानसे तिस मनुष्य जन्मविषे द्विजोत्तमहुआ अरु तपकरके ब्रह्मचर्यकरके अरु श्रद्धाकरके सम्पन्नहुआ महिमा (विभूति) को अर्थात् धन पुत्र क्षेत्र दासादि वैभवको अनुभवकरताहै। परन्तु श्रद्धा रहितहुआ यथेष्ट आचरणको करता नही ॥ ["एक देशके ज्ञानसे रहित जो योगभ्रष्टहै सो कदाचित भी दुर्गतिको पावता नहीं"] ऐसा गीताका प्रमाणहै। ताते ओंकारकी एकमात्राके ध्यानकरने वालेको कहेहुए फलका असंभवनहीं इति सिद्धम् ॥ ३ ॥ ५५ ॥

४॥ हे सौम्य। "अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते"। (पुनः जब दो मात्राकरकेयुक्त मनविषे पावताहै)। अर्थात् पुनः एकमात्रारूप ॐकारके उपासकसे इतर जब दोमात्राके विभागका

॥ अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्प-॥
॥द्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । स ॥
॥सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभू-॥
॥य पुनरावर्त्तते ॥ ४ ॥ ५६ ॥

ज्ञाता जो पुरुष दोमात्रारूपसेयुक्त ॐकारकों ध्यानकरताहै, सो स्वप्नरूप मननकरने योग्य यजुर्वेदमय चन्द्ररूप,देवतवाले मनविषे भलीप्रकार एकाग्रतासे आत्मभावकों प्राप्नहोताहै०—। "सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । स सोमलोकं"। ‘सो यजुर्वेदसे अन्तरिक्षलोकवाले चन्द्रलोककों प्राप्नहोताहै’ —० सो इसप्रकार आत्मभावकों प्राप्न मरणरहित हुआ द्वितीयमात्रारूप यजुर्वेदसे अन्तरिक्षरूप-आधारवाले द्वितीयलोकरूप चन्द्रलोकके अर्थ प्राप्नहोताहै । अर्थात् तिस द्वितीयमात्राके उपासक साधककों यजुर्वेद जो है सो चन्द्रलोक सम्बन्धी जन्मकों देताहै०—। "स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ४"। ‘सो चन्द्रलोकविषे विभूतिकों अनुभवकरके फेर आवताहै’ —० सो उपासक तिस चन्द्रलोकविषे उत्तम पदार्थोंकों भोगके पुनः इस मनुष्यलोकविषे (ब्राह्मणादि उत्तमकुलमें) जन्म पावताहै ॥ ४ ॥ ५६ ॥

रामः रामः रामः रामः रामः रामः रामः रामः

॥यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्ष-॥
॥रेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये॥
॥सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत॥
॥एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभि-॥
॥रुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्प-॥
॥रात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ॥
॥भवतः॥ ५ ॥ ५७ ॥

भा॰हे सौम्य ।"यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत"। 'जो पुनः तीनमात्रावाले ॐ इस ही अक्षरसे इस परम पुरुषको ध्यानकरताहे' अर्थात् जो पुरुष पुनः । तीनमात्राके विषयकरनेवाले ज्ञानयुक्त ॐ इस प्रकारके इस ही अक्षररूप प्रतीकसे इस ॐ कार रूप सूर्य्यके अन्तरगत परे पुरुषको ध्यानकरताहै— ।"स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः"। 'सो तेजरूप सूर्य्यविषे प्राप्तहोताहै'—सो तीसरीमात्रारूप ध्यानकरताहुआ, मरा हुआ भी तिसध्यानमात्रसे तेजरूप सूर्य्यविषे प्राप्तहोताहे । अरु सो सूर्य्यसे । चन्द्रलोकादिकोंविषे गएहुए जैसे फेरआवतेहैं तैसे, पुनरावृत्तिको पावतानहीं किन्तु सूर्य्यविषे प्राप्तहुआ ही होताहै । अरु— ।"यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तो

‘जैसे सर्प त्वचासे छूटजाताहै ऐसे प्रसिद्ध ही सो पापसे मुक्त होताहै’—जिसप्रकार सर्प अपनी त्वचासे मुक्तहोताहै, पश्चात् जीर्णत्वचासे छूटाहुआ सो सर्प पुनः नवीनहोताहै। हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्तहै। तैसे ही प्रसिद्ध सो तीनमात्राका ध्यान करनेवाला साधक सर्पकी त्वचास्थानापन्न अपने अप्रबुद्धादिरूप पापसे मुक्त होताहै। अरु "स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं"। ‘सो सामसे ऊंचे ब्रह्मलोककों पावताहै’—जब अप्रबुद्धतारूप पापसे मुक्तहोताहै तब पीछे सो साधक तृतीयमात्रारूप सामवेदकरके ऊंचे हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मके सत्य नामवाले लोक (सत्यलोक) को प्राप्तहोताहै—॥ सो हिरण्यगर्भ सर्व संसारी जीवोंका आत्मरूपहै। अरु जिसकरके सो हिरण्यगर्भ समष्टि लिंगदेहरूपकरके सर्व भूतोंका अन्तरात्माहै तिसकरके समष्टि लिंगशरीररूप हिरण्यगर्भविषे व्यष्टिलिंगदेहोंके अभिमानि सर्व जीव मिलेहुएहैं। एतदर्थ सो हिरण्यगर्भ जीवघनरूपहै॥ वाक्य यो जना॥ "स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते"। ‘सो इस पर जीवघनसे पर पूरियोविषे स्थित पुरुषकों देखताहै’—सो विद्वान् तीसरी मात्राकों ध्यानकरताहुआ इस सर्वसे उत्कृष्ट जीवघनरूप हिरण्यगर्भसे पर परमात्मानामवाले

॥तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता ॥
॥अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ता । क्रियासु ॥
॥बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु ॥
॥न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥ ५८ ॥

सर्व शरीररूप पुरीओंविषे स्थित पुरुषकों देखता है [यहां इसरीतिसे अन्वयहै । सो विद्वान् साधक अभी इस अपनी जीवनदशाविषे ध्यानकरताहुआ शरीरावसानके पश्चात् ब्रह्मलोककों प्राप्तहोताहै । तहां ब्रह्मलोकविषे स्थावर जंगमरूप प्राणियोंसे पर जो जीवघननामक हिरण्यगर्भ। तिससे पर जो परमात्मापुरुष तिसकों अपना। आप देखताहै] । "तदेतौ श्लोकौ भवतः"। 'तहां यह दो मंत्रहैं' तहां यह उक्तअर्थके प्रकाशकरनेवाले दो मंत्र प्रमाण होतेहैं ॥ ५ ॥ ५७ ॥

६॥ हे सौम्य ! "यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणोंमित्ये" इत्यादि इस ब्राह्मवाक्यके साथ प्रथम (पहिले) मंत्रकी योजना करतेहैं॥ ।"तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः"। 'तीन मात्रा मृत्युगोचर परस्पर सम्बन्धवालीहैं' अर्थात् तीनहै संख्या जिनकी ऐसी जो अकार उकार मकार नामवाली ॐ कारकी तीनमात्राहै सो मृत्युकर

के आक्रान्त (व्याप्त) अर्थात् मृत्युका विषयही हैं। अरु परस्पर सम्बन्धवालीहै। सो तीनमात्रा विशेष करके एक एक विषय विषे ही योजना न कियाहोंय ऐसा नहीं, किन्तु विशेषकरके एक ही ध्यानकालविषे स्यागकरी भयी; जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप स्थानके अभिमानी जे वैश्वानरादिकनसों अभिन्न विश्वादिक पुरुषोंके अर्थात् [वैश्वानरसे अभिन्न विश्व जाग्रत्का अभिमानी तिसका स्थूलशरीररूपस्थान। अरु हिरण्यगर्भसे अभिन्न तैजस स्वप्नका अभिमानी लिंगशरीररूप स्थान। अरु अव्यक्तसे अभिन्न प्राज्ञ सुषुप्तिका अभिमानी कारणशरीररूपस्थान] अकार उकार मकाररूप मात्रासे, तादाम्य (एकरूपता) करके ध्यानरूपजो "क्रियासु बाह्याभ्यन्तर मध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कंपते ज्ञः"। (बाहर भीतर अरु मध्यकी क्रियाके भलीप्रकार योजनाकियेहुए ज्ञाता कम्पमान होता नहीं) बाहर भीतर अरु मध्यकी क्रियाहैं तिनके सम्यक् प्रकार ध्यानके कालविषे योजना कियेहुए जब तिसके साथ अकारादि तीनों मात्रा योजना कियाहोय तब ओंकारका कहेहुए विभागका जाननेवालाजो योगीहै सो चलायमान् अर्थात् विक्षेपकों प्राप्तहोता नहीं, किन्तु स्वरूपमें स्थिर ही रहताहै। अर्थात् [जो चलायमान होताहै सो जाग्रत्

॥ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स साम-॥
॥भिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते तमोंकारेणैवाय-॥
॥तनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरमम्-॥
॥तमभयं परञ्चेति ॥७॥ ५६ ॥

॥इति प्रश्नोपनिषदि पंचम प्रश्नः५॥

स्वप्न सुषुप्ति विषे होताहै सो सर्व ओंकार ही है । ऐसा जानलिया तब चित्त चंचलताछोड़ स्वरूपमें निश्चलहोताहै। जिसकरके उस साधक पुरुषने स्थूलादि स्थान सहित जाग्रत् स्वप्न अरु सुषुप्ति अरु विश्वादि जो तिनके अभिमानी पुरुष है, सो अकारादि तीनमात्रामय ॐकाररूपकरके देखे है, एतदर्थ इसप्रकार जाननेवाले योगीका चलायमानहोना संभवे नहीं ॥ ६ ॥ ५८ ॥

---

७ ॥हे सौम्य जिसकरके सो ऐसा पूर्वोक्त विद्वान् सर्वका आत्मा ओंकारमयहै तिसहेतुसे किसकारणकरके उसका चलायमानहोनाहोय, किन्तु अपनेसे पृथक् वस्तुके अभावसे किसीकरके भी चलना (विक्षेप) बने नहीं । अथवा अपनेसे अपृथक् निश्चयभये जगत्विषे किस विषयके अर्थ विक्षेपवान होगा, किन्तु किसीविषे भी नहीं । इस अर्थके बोधक प्रथम मंत्रपाठके अब

सर्व अर्थके संग्रहरूप अर्थवाला द्वितीय मंत्र कहते हैं॥ हे सौम्य। "ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते"। ऋग्वेदसे इसकों यजुर्वेदसे अन्तरिक्षकों (अरु) जिसकों विद्वान् जानते हैं (ऐसे ब्रह्मलोककों) सामवेदसे (पावताहै)। अर्थात् सो विद्वान् {जो एकमात्रारूप} ॐकारका उपासकहै ऋग्वेदसे इस मनुष्यलोककों पावताहै। अरु {जो दोमात्रा वा दूसरीमात्रारूप ॐकारका उपासकहै सो} यजुर्वेदकरके अन्तरिक्षगत चन्द्रलोककों पावताहै। अरु जिसकों विद्वान् पुरुष जानतेहैं अरु अविद्वान् नहीं जानते ऐसा जो सत्य नामवाला ब्रह्मलोकहै तिसकों {तीन मात्राका वा तीसरीमात्राका उपासक} सामवेदकरके प्राप्तहोताहै। इसप्रकार विद्वान् उपासक अपरब्रह्मरूप तीनप्रकारकेलोककों {समाप्तिक} ॐकाररूप आलम्बन (साधन) से पावताहै॥ अरु "तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति"। जो शान्त अजर अमर अभयहै तिस पर(ब्रह्म) कों ॐकाररूप ध्यानसे ही पावताहै। अर्थात् जो अक्षर सत्यपुरुष संज्ञक शान्त विमुक्त अरु जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिआदि भेदरूप सर्व प्रपंचसे रहित है। अरु {जब अवस्था त्रयरूप सर्व प्रपंचसे रहितहै} इस ही करके जरा अरु मृत्युकरके रहितहै।

अरु जिस करके जराआदि विकारोंसे रहित है, इस ही से अभय है। अरु जब अभय है तब ही सर्व से अधिक है, ऐसा जो {त्रिमात्रिक ॐकारका लक्ष्य रूप} परब्रह्म है तिसकों भी {प्रतिमावत् प्रतीक रूप त्रिमात्रिक} ॐकारकी (उपासनारूप) आलम्बन (साधन) से ही प्राप्त होता है ॥ ।"इति"। यहाँ जो, इति, शब्द है सो वाणी की परिसमाप्त्यर्थ है इति सिद्धम् ॥ ७ ॥ ५९ ॥

॥ इति प्रश्नोपनिषद्गत पञ्चम प्रश्नभाषाटीका॥
॥ समाप्त ॥
॥ हरिः॥
॥ॐ॥
तत् सत ब्रह्म ॥
॥ ५ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत षष्ठ प्रश्नः

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ
भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मा-
मुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । षोडशकलं ॥
भारद्वाज पुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रुवं ॥
नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथं ते ॥
॥ नावक्ष्यमिति समूलो वा एष परिशुष्यति ॥
॥यो ऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुं
॥तत्तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज तं त्वा पृच्छा-॥
॥मि क्वासौ पुरुष इति ॥ १॥ ६० ॥

॥ अथ प्रश्नोपनिषद्गतषष्ठ प्रश्नभाषाटीका॥
॥ प्रारम्यते ॥

१॥ हे सौम्य ! सुषुप्ति कालविषे विज्ञान रूप जीवात्मा सहित सर्व कार्य कारणात्मक जगत् अक्षर रूप परब्रह्म विषे लय होता है ; इस प्रकार पूर्व चतुर्थ प्रश्नविषे कहि आये हैं । तिस कथन रूप प्रमाण की सामर्थ्य से प्रलय विषे भी तिसही अक्षर विषे यह सर्व जगत् लय होता है । अरु जिस करके कार्य का अकारण विषे लय सम्भवता नहीं, अर्थात् जो जिसका कार्य्य है सो परिणाम में उसही अपने कारण में लय होता है अन्य में नहीं, । अरु !" आत्मनः एष प्राणो जायते "। यह इसही उपनिषद् के तृतीय

प्रश्न के तीसरी श्रुति से कहा है। एतदर्थ जिस ब्रह्म विषे यह जगत् लय होता है तिसही ब्रह्म से जगत् का उपजना सिद्ध होता है ॥ अरु जगत् का जो मूल (कारण) है तिसके सम्यक् ज्ञान से परम मुक्ति होती है। अर्थात् [यद्यपि अद्वैत आत्मा के सम्यक् ज्ञान हुये ही मुक्ति होती है, कारण के ज्ञान से नहीं, तथापि तिस आत्मा को कारणत्व होनेसे तिससे भिन्न कार्य्य का अभाव है, क्योंकि कारण से भिन्न कार्य्य की सत्ता होती नहीं, ताते आत्मा के अद्वैतपने का ज्ञान सिद्ध होता है, एतदर्थ तिस जगत् के मूल कारण आत्मा के सम्यक् ज्ञान से { चतुर्धा मुक्ति से भिन्न } परम मुक्ति होती है ।" आत्मा वा इदमेव एवाग्र आसीत्"।"स एतमेव पुरुष ब्रह्म ततमपश्यत्"।"प्रज्ञानं ब्रह्म"। स एतेन प्रज्ञाने नात्मना अमृतः समभवत्"।"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्"।"आचार्य्यवान् पुरुषो वेद"।"अन्य समस्ते"।"तमेवैकं जानथ"।"अमृतस्यैष सेतुः"। "अहं ब्रह्मास्मीति"।"तस्मात्तत्सर्वमभवत्"। ॥ १ यह जगत् प्रथम निश्चय करके एक ही आत्मा था;२सो इसही पुरुष कों परिपूर्ण ब्रह्म रूप देखता भया ३ प्रज्ञान ब्रह्म है;४ सो इस प्रज्ञान रूप से अमर होताभया; ५ हे सौम्य यह आगे एक अद्वैत सत् ही था ; इस प्रकार आरंभ करके । ६ आचार्यवान् पुरुष जानता है ७ तिसही एक कों जानो ;८ यह अमृत का सेतु है;९ में-

ब्रह्म होंः ९ ताते सो सर्वरूप होता भया ः॥ इत्यादि अनेक श्रुतियों के वाक्यों से निश्चय किया है] यह सर्व उपनिषदों का निश्चितार्थ है । अरु इसही उपनिषद् के चतुर्थ प्रश्न विषे !"स सर्वज्ञः सर्वो भवतीति॥ ९ सो सर्वज्ञ सर्वरूप होता है ः। इस प्रकार कहा है। ताते सो अक्षर ब्रह्मरूप सत्पुरुष नाम वाला जो { मुमुक्षुओं करके } जानने योग्य वस्तु है सो कहा है।। इसप्रकार पूछने योग्य है । अरु तिस सत्पुरुष कों शरीर के भीतर स्थित कहा है तिसकरके, प्रत्यगात्मा के सम्यक् ज्ञानार्थ इस षष्ठ प्रश्नका आरम्भ करते। हैं । अरु यहां सुकेशा नामवाले शिष्य ने पूर्वे व्यतीत भये अर्थ का पुनः प्रश्न रूप कथन किया है, सो ज्ञानकी दुर्लभता की प्रसिद्धि होने से। तिसकी आस्त्यर्थ पुरुषार्थ विशेष के उत्पादनार्थ है ॥ अव ण[]"गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च। सर्वे प्रति देवतासु । कर्म्माणि विज्ञान मयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति "! ९ पंचदश कला अपने कारण भाव कों प्राप्त भई कर्म अरु। विज्ञानमय (जीवात्मा) सो पर -अव्यय (अविनाशी) अक्षर ब्रह्म विषे एक (अभेद) होतेहैं इसप्रकार मुंडक उपनिषद् के तृतीय मुंडक के दूसरे खंड के ७ में मन्त्र से कहिके -!"यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छंति नामरूपे विहाय ।

तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्"। अथ —"जैसे नदीयां सर्वओरसे बहती हुयी अपनेकारण समुद्रविषे जाय अपने नामरूप कों छोड़ (समुद्र ही होतीहैं)। तैसे प्रत्यगात्माकों सम्यक् अनुभवकरनेवाला विद्वान् (बुद्धिविशिष्टचैतन्य) परात्पर परम दिव्य अक्षर पुरुषकों प्राप्त होताहै"; इस मुंडककेही उक्त खंडके ८ में मन्त्र करके दृष्टान्तके कथनप्रमाणसे परब्रह्मकी प्राप्ति कहीहै। ताते इन उक्त दोनों मन्त्रोंका अर्थ सविस्तर कहनेके अर्थ इस षष्ठ प्रश्नका आरंभकरते है] ॥ हे सौम्य सत्यकामामुनिके प्रश्नके निर्धारहोनेके—। "अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ"। "पश्चात् इसकों भारद्वाजका पुत्र सुकेशा प्रश्नकरताभया"—अर्थात् सत्यकामाके प्रश्नके अनन्तर। इस पिप्पलादमुनिरूप आचार्यसे भारद्वाजमुनिका पुत्र सुकेशानामवाला मुनि प्रश्नकरताभया ॥ सुकेशा उवाच ॥— । "भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत"। "हे पूज्याके योग्य कौसलदेशका हिरण्यनाभ राजपुत्र मेरे समीपआय इस प्रश्नकों पूछताभया"—हे सर्वसंशयके नाशकरता हे भगवन् एक समय, कौसलदेशमें उत्पन्नभया ऐसा जो हिरण्यनाभ नाम वाला क्षत्रियजातीय प्रख्यात राजपुत्र मेरेसमीप

आय इस कथनकरनेके प्रश्नकों पूछता भया कि — ।"षोडशकलं भारद्वाज पुरुषंवेत्थ"। ‘हे भारद्वाज षोडशकलावाले पुरुषकों जानताहै’ —‘हे भारद्वाज, सोलह संज्ञाहै जिनकी ऐसी जो कलाहैं सो, शरीरविषे अवयवोंवत्, जिस आत्मरूप चैतन्य पुरुषविषे अविद्याकरके अध्यारोपमात्रहै, एतदर्थ इस चैतन्य पुरुषकों सोलहकलावालाकहतेहैं तिस सोलह कलावाले पुरुषकों तूं जानताहै। हे भगवन् इसप्रकार जब उसने प्रश्नकिया तब ।"तमहं कुमारमब्रुवन् नाहमिमंवेद"। ‘तिस कुमारकों इसकों मैं जानता नहीं ऐसे कहता भया’ अर्थात् —‘तिस प्रश्नकर्त्ता राजकुमारकों जिसके विज्ञानार्थ तेरा प्रश्नहै तिस पुरुषकों मैं जानता नहीं इसप्रकारमैं कहताभया। परन्तु उक्तप्रकारका कहनेवालाजो मैं तिस मेरेवाक्यमें भी, ‘यह भारद्वाजमुनि कहताहै कि मैं उस सोलहकलावाले पुरुषकों नहीं जानता सो यह आप जानता होयके नहीं जानता कहताहे वा नजानके, इसप्रकार, अज्ञानके संशयका संभव उस कुमारविषे विचार तिस राजपुत्रकों मैं ‘प्रश्नकिये पुरुषके विषयमें, अपने अज्ञानका कारण कहता भया कि हे राजकुमार — ।"यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति"। ‘जब मैं इसकों जानता होउं’ तब

तेरे अर्थ कैसे न कहों ;—जब मैं तुरुकारके प्रश्नकिये
पुरुषकों जानताहोउं तो तुम सरीखे उत्तमगुणसम्पन्न
शिष्यके अर्थ कैसे न कहूं, किन्तु कहता ही। हे भग-
वन् इसप्रकार कहके भी मैं अपने वाक्यमें उसका
अविश्वास ज्ञान विश्वास करावनेके अर्थ पुनः मैंने
कहा कि हे राजकुमार—। "समूलो वा एष परिशुष्य-
ति योऽनृतमभिवदति"। ; जो अनृत कहताहे यह
समूल सूखजाताहे ;—जो पुरुष ज्ञानीहुआ भी अ-
पनेआपके विषयमें "मैं अज्ञानी हों," इसप्रकारका
आरोपकरताहुआ अन्यथा भये अर्थरूप अनर्थ
(कूठ) कों कहताहे सो अपने धर्मकर्मरूप मूल स-
हित सूख जाताहे अर्थात् इसलोक परलोकसे भ्रष्ट
होताहे—। "तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुं"। ; ताते अनृ-
त कहनेकों योग्य नहीं ;—एतदर्थ इसप्रकार जब मैं
जानताहों तब मैं मूढ़ पुरुषोंवत् कूठ कहनेकों यो-
ग्य नहीं हों। हे भगवन् इसप्रकार जब मैं कहा त-
ब—। "स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज"। ; सो चुपहु-
आ रथमें बैठ जाताभया ;—मेरेकहे वाक्यमें वि-
श्वासकों प्राप्तहोय सो राजकुमार प्रश्नसे उपरामहो-
य रथमें बैठ जहांसूं आयाथा तहांकों जाताभया।
ताते हे भगवन्—। "तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष
इति १"। ; तिसकों तुम्हारेनाई पूछताहों यह पु-
रुष कहांहे ;—न्यायमे शरणकों प्राप्तभये अधि-

॥तस्मै स होवाच । इहैवान्तःशरीरे ॥
॥सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताःषोडशकलाः
॥प्रभवन्तीति ॥ २ ॥ ६१ ॥

कारी शिष्यके अर्थ ज्ञाता गुरुकरके विद्या कहनेकों योग्य ही है । अरु सर्वअवस्थाविषे झूठ कदापि कहनेके योग्य नहीं । अरु जाननेके योग्य होनेसे बाणवत् मेरे हृदयविषे स्थित,— अर्थात् [यावत् जाननेकों इच्छितवस्तुकों जानते नहीं तावत्पर्यन्त सो वस्तु हृदयविषे बाणवत् भासेहै] —तिस पुरुषकों मैं तुम्हारेप्रति पूछताहौं कि यह जो जाननेयोग्य पुरुषहै, कि जिसके जाननेके अर्थ राजपुत्रका मुझसे प्रश्नथा, सो कहांवर्त्तताहै ॥ १ ॥ ६० ॥

२ ॥हे सौम्य उक्तप्रकार जब सुकेशामुनिने अपने वृत्तान्त कहने पूर्वक प्रश्नकिया तब—। "तस्मैसहोवाच"। 'तिसकेअर्थ सो कहते भये'—तिस प्रश्नकरता सुकेसामुनिके अर्थ सो सर्वज्ञ पिप्पलादमुनीश्वर कहतेभये—। "सोम्य यस्मिन्नेताःषोडशाकलाः प्रभवन्तीति"। 'हे सौम्य जिसविषे यह सोलह कला उपजतीहैं'—कि हे प्रियदर्शन जिस पुरुषविषे यह अग्रिम कहनेकी प्राणादि सोलह कला उत्पन्नहोतीहैं, एतदर्थ सोलहकलारूप

॥स इक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त ॥
॥उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रति-॥
॥ष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ३ ॥ ६२ ॥

उपाधियोंसे जो पुरुष निष्कल (कलारहित) है। सो निष्कलहुआ भी अविद्यादोषकरके कलावाले। वत् देखनेहैं, ऐसा जो, शुद्ध चैतन्य, पुरुष है— "स पुरुषो इहैवान्तः शरीरे"। सो पुरुष इसही। शरीरके अन्तरहै ;—सो पुरुष कि जिसके अर्थ। तेरा प्रश्नहै इस ही शरीरविषे {कि जिसविषे। स्थितहुआ तूं प्रश्नकरताहै} एक हृदय कमलहै तद्गत जो {दहरनामवाला} अन्तराकाशहै तिस आकाशके मध्य {मुमुक्षुओंकरके} जाननेयोग्य। है। अन्य देशविषे कहीं भी नहीं ॥ २ ॥ ६१ ॥

३ ॥ हे सौम्य {ब्रह्मविद्या आदि जिसविद्याकों कहतेहै तिस} विद्यासे तिस, निष्कल, पुरुषकी, अविद्यादोषसे आरोपित जे कला तिनके अध्यारोपके अपवादके होनेसे सो पुरुष केवल अनुभवकरनेके योग्यहै, एतदर्थ कलाओंकी उत्पत्ति उससो कही है। अरु अत्यन्त भेदरहित अद्वैत। शुद्ध तत्वविषे अध्यारोप किये विना प्राणादि। कलाका प्रतिपाद्य अरु प्रतिपादनादिक व्यवहार।

करनेकों समर्थ नहीं, एतदर्थ इन कलाओंके उत्पत्ति स्थिति अरु लयका अविद्याके आधीन आरोप करतेहैं अरु जिसकरके यह कला चैतन्यसे अभेदकरके ही उत्पन्नहुई स्थितहुई लयहुई सर्वदा देखतेहैं ॥ याहीसे कोईएक क्षणिक विज्ञानवादी, मूर्ख भ्रमी पुरुष अग्निके संयोगसे घृतवत् चैतन्य (विज्ञान) ही घटादिआकारसे क्षणक्षण विषे उपजेहै, अरु नाशहोताहै, इसप्रकारमानतेहैं। अरु शून्यवादी जो पुरुषहैं तिनकों सुषुप्तिआदि अवस्थाविषे तिन रूपादि विषयके अरु ज्ञानरूपसे चैतन्यके अभावहुए सर्व शून्य ही होताहै, ऐसा भ्रमहोताहै ॥ अरु दूसरे न्यायशास्त्रके ज्ञाता नैयायिक पुरुष जो हैं सो चेतनाके करनेवाला नित्य आत्माका घटादिकोंको विषय करनेवाला चैतन्य (ज्ञानगुण) अनित्य उपजताहै अरु नाश होताहै, इसप्रकार कहतेहैं ॥ अरु अन्य जे चारवाक मतके पुरुषहैं सो ऐसा कहतेहैं कि चैतन्य जिसकों कहतेहैं सो देहाकारसे मिलेहुए जे पृथिव्यादि वायुपर्यन्त चार भूतहैं तिनका धर्म (संयोगीफल) है ॥ हे सोम्य इन कहेहुए सर्व पुरुषोंकों प्राणादिकला अरु चैतन्यके अभेदकी भ्रान्तिहै॥ परन्तु श्रुतिका सिद्धान्त यह है जो जन्म मरणरूप धर्मसे रहित चैतन्यरूप आत्माही नामरूपादि उपा-

धियोंके धर्मोंसे नानाभावकरके अरु कार्यभाव करके प्रतीतहोताहै ॥ "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"। ‹सत्य ज्ञान अनन्तरूप ब्रह्महै› अरु "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म"। ‹प्रज्ञान आनन्दरूप ब्रह्महै› अरु "विज्ञानघन एव"। ‹विज्ञानघन हीहै› इत्यादिश्रुतियोंके प्रमाणसे ॥ अरु ऐसेहुए अर्थात् क्षणिकविज्ञानवादिआदिकोंके कहेप्रमाणहुए, श्रुतिके सिद्धान्तसे विरोधआवताहै एतदर्थ वो क्षणिकविज्ञानवादी आदिकोंके मत सर्वथा त्यागने हीयोग्यहै ॥ [अरु ज्ञानकालविषे विषयोंका सद्भाव ही होय इस नियमका अभावहै ताते। अरु विषयकालविषे ज्ञानके सद्भावका नियमहै ताते, तिस ज्ञान अरु विषयका भेदहै। इस प्रकार क्षणिक विज्ञानवादीके पक्षको खंडनकरतेहुए, अरु अव्यभिचारतासे ही ज्ञानकी नित्यताको साधतेहुए नैयायिक आदिकोंके मतको खंडन करतेहैं। यहां यह अर्थहै कि घटज्ञानके कालविषे पटके अभावका संभवहै तिसकरके विषयोंको ज्ञानसे व्यभिचारित्वपनाहै। अरु ज्ञानको तो विषयकालविषे अवस्थहोनेके नियमसे अव्यभिचारित्वपना सिद्ध ही है ॥ अरु पटज्ञानके कालविषे घटका ज्ञान भी नहींहै, ताते घटके ज्ञानको भी पटरूपविषयसे व्यभिचारित्वपनाहै ॥ इस प्रकारसे चित्तविषेत्यायके विषयों

का स्वरूपसे ही व्यभिचारिलपनाकहाहै । अरु ज्ञान
का विषयविशिष्टतारूपमात्रसे ही व्यभिचारहै स्व-
रूपसे नहीं यह भेदहै] ~स्वरूपसे अव्यभिचारीप-
दार्थोंविषे चैतन्यके अव्यभिचारहोनेसे जैसे२ जो१
जो पदार्थ जानतेहैं, तैसे तैसे जाननेयोग्यहोनेसेही
तिस२ पदार्थके चैतन्यका अव्यभिचारपनाहीहै
॥ शंका ॥ कोईएक वस्तु जानतेनहीं परन्तु होतीहै।
अर्थात् [उत्पन्नहोयके शीघ्रही नाशहोनहार ^
आदिक वस्तु, अरु गिरिगुहान्तरगत वस्तुकों ^
अज्ञात होनेकरके ज्ञानका भी ज्ञेयरूपविषयसे४
व्यभिचार प्रसिद्धहै] ॥ समाधान ॥ हे सौम्य ^
यह वादीका शंकारूप कथनकैसाहै कि, जैसे५
कोई कहे कि रूपसंज्ञक विषयकों देखते नो न-
हीं तथापि चक्षुहै, तद्वत, अघटितहै ~ अ-
र्थात् [वादीने कहा कि कोइक वस्तु जानते^
नहीं परन्तुहोतीहै, सो बने नहीं क्यों कि तिस-
वस्तुके अज्ञानके होनेसे तिसके अस्तित्वभाव५
की असिद्धिहै, अर्थात् जिसवस्तुका ज्ञान नहीं
अरु सो वस्तु है, ऐसा वस्तुका अस्तित्वभाव ज्ञा
नबिना कदापि सिद्धहोता नहीं, ताते तैसा अज्ञा-
तरूप पदार्थ असिद्ध ही है] ~एतदर्थ घटके
ज्ञानकालविषे कदाचित् पटके अभावसे ज्ञेय
(विषय) रूप पट ज्ञानसे व्यभिचारकों पावताहै

परन्तु ज्ञान जो है सो कदाचित् भी व्यभिचारकों पावता नहीं क्यों कि एक ज्ञेय (विषय) के अभाव हुए भी अन्य ज्ञेय (विषय) विषे ज्ञानका स्वरूप करके सद्भावहै । अरु सुषुप्तिविषे ज्ञानके न होनेसे ज्ञेय विषय कुछ होताहै, ऐसी प्रतीति किसीकों भी होती नहीं, एतदर्थ भी ज्ञान, व्यभिचारकों पावता नहीं ॥ अरु जो कहै कि सुषुप्तिविषे अदर्शनहोनेसे ज्ञानका भी अभावहै ताते ज्ञेयके व्यभिचारवत् ज्ञानके स्वरूपका भी व्यभिचारहै। सो— [क्या तब सुषुप्तिविषे तूं ज्ञेयके अभावसे ज्ञानका अभाव साधताहै वा ज्ञानके अदर्शन होनेसे ज्ञानका अभाव साधताहै { तिन दोनो पक्षोंमें, जब सुषुप्तिरूप ज्ञेयकों अंगीकारकिया तब ज्ञानके अदर्शनकी असिद्धिहै, क्यों कि ज्ञानके अभावसे सुषुप्तिरूप ज्ञेय सिद्ध होता नहीं, ताते दूसरा पक्ष बनता नहीं यह आगे कहेंगे }—अरु जो तूं प्रथम पक्षकों कहेगा कि ज्ञेयके अभावसे ज्ञानका अभावहै, तौ भी ज्ञेयकों प्रकाश्यरूपहोनेसे उसके अभावभये तिसके प्रकाशकरूप ज्ञानका अभावहै, इसप्रकार मानताहै, किम्वा ज्ञान अरु ज्ञेय इन दोनोंकी एकताका अभावरूप ज्ञानका अभावहै, ऐसा मानताहै, तहां इन दोनों पक्षोंमें भी ज्ञान अरु ज्ञेयका परस्परमें व्यभिचारकेहोनेसे

प्रथम पक्ष बने नहीं। अरु जो कहे कि प्रकाश्यके ज्ञानरूप रावाही सामर्थ्यवाले प्रकाशका प्रकाश्यके अभावहुए अभाव कहतेहैं, तहा प्रकाशको प्रत्यक्ष सिद्धहोनेसे सो भी बने नहीं, क्यों कि अन्धकारविषे प्रकाश्य रूपकी अप्रतीतिके हुए तिसके ज्ञानविषे समर्थ चक्षुरूपप्रकाशकी अभावकी कल्पना करनी भी अशक्यहै ताते, प्रथमपक्ष बने नहीं। अरु सुषुप्तिविषे जे ज्ञेयका अभाव सो अभावरूप ही ज्ञेयहै तिस ज्ञेयके विद्यमान होते, ज्ञान अरु ज्ञेय इन दोनोंके तादात्म्यमय एकताके अभावरूप ज्ञानका अभावहै। यह दूसरा पक्ष भी बनतानहीं, इस अभिप्रायसे सिद्धान्ति कहताहै [~बने नहीं। क्यों कि ज्ञेयके प्रकाशक ज्ञानको, सूर्यादिकोंके प्रकाशवत् ज्ञेयका प्रकाशत्वहै। अरु जैसे अपनेकरके प्रकाशने योग्य जे घटादि प्रकाश्य तिनके अभाव भये सूर्यादिकोंके प्रकाशके अभावका असंभवहै तद्वत, सुषुप्तिविषे ज्ञानके अभावका असंभवहै। अरु जैसे अन्धकारविषे चक्षुसे रूपविषयकी अप्रतीतिके होनेसे, क्षणिक विज्ञानवादीयोंकरके, चक्षुके अभावकी कल्पनाकरनेको भी शक्य नहीं है, तैसे ही सुषुप्तिविषे ज्ञेयके अभावहुए ज्ञानके अभावकी कल्पनाकरनेको अशक्य ही है॥ अरु जो

—[विज्ञानवादिके मतविषे विज्ञानसे भिन्न प्रकाश्यादिकोंका अभावहै ताते प्रकाश्यरूप विज्ञानके परिणामके अभावहोनेसे प्रकाश्यरूप विज्ञानके परिणामके संभवकरके व्यभिचारके स्थलका अभावहै ताते तहां सुषुप्तिविषे ज्ञान अरु ज्ञेयके अभावका व्यभिचार नहींहै, इस अभिप्रायसे वादी शंका करताहै]—कहे कि क्षणिकविज्ञानवादी जो है,सो ज्ञेयके अभावभये ज्ञानका अभाव कल्पता ही है, हे वादी जब ऐसे ही है, तब ज्ञानके अभावका जो कल्पक (वृत्ति) सोई ज्ञेय तिस ज्ञेयके अभावका ज्ञान अंगीकार करतेहैं वा नहीं,यह विज्ञानवादीसों पूछतेहैं, सो तिसका उत्तर कहना योग्यहै ॥ (हे सौम्य) तिन कहेहुए दोनोंपक्षोंमें प्रथम पक्षविषे ज्ञानके अभावकी सिद्धि नहींहै, क्यों कि तिस ही अभावके ज्ञानका सद्भावहै ताते। इसप्रकार कहतेहैं, जिस ज्ञेयके अभावके ज्ञानसे तिस ज्ञानके अभावकों कल्पताहै, तिस ज्ञानका अभाव किसकरके कल्पताहै। किसी करके भी कल्पनाकरनेकों शक्य नहीं ॥ अरु द्वितीय पक्षं भी बने नहीं। क्यो कि तिस ज्ञेयके अभावरूप अज्ञानकों भी ज्ञानके अभावके कल्पक होनेका असंभवहै ताते। अरु अवश्य ज्ञेयरूप होनेसे तिसके अभावहुए तिसज्ञेयके अभावकी कल्पनाका

असंभवहै ताते, ज्ञेयके अभावके ज्ञानके अंगीकारकापक्ष युक्त नहीं ॥ अरु जो ऐसाकहै कि ज्ञानकों ज्ञेयसे अभिन्नहोनेकरके ज्ञेयके अभावहुए ज्ञानका अभावहोवेगा, सो बने नहीं । काहेतें कि अभावकों भी ज्ञेयपनेके अंगीकारते । (हे सौम्य) जब विज्ञानवादीयों करके अभाव भी ज्ञेय अरु नित्य अंगीकार करते हैं, तब तिस ज्ञेयसे अभिन्न ज्ञान भी नित्यरूप कल्पना किया ही होगा, अरु तिस ज्ञानके अभावकों ज्ञानरूप होनेसे अभावपना कहनेमात्रही है । अरु परमार्थसे ज्ञानका अभावपना अरु अनित्यपना नहीं है । अरु नित्यरूप ज्ञानके नाममात्र अभावके आरोपविषे हमारी क्या हानिहै कुछ भी नहीं ॥ अरु जो ऐसाकहै कि अभाव ज्ञेयरूपहुआ भी ज्ञानसे भिन्नहै, तब इस तेरे कहनेसे ज्ञेयके अभावहुए ज्ञानका अभाव जो तेरे मनमें माना है सो सिद्ध नहीं होगा ॥ अरु जो ऐसा कहै कि ज्ञेय वस्तु ज्ञानसे भिन्नहै, अरु ज्ञान जो है सो ज्ञेयसे भिन्न नहीं, सो बने नहीं, क्योंकि शब्दमात्रके भेदकरके वास्तविक भेदका असंभवहै ताते । अरु जब ज्ञेय अरु ज्ञानकी एकता अंगीकार करताहै, तब ज्ञेय ज्ञानसे भिन्नहै अरु ज्ञेयसे भिन्न ज्ञान नहीं, यह जो कथनहै सो वह्नि (अग्नि) अग्निसे भिन्नहै अरु अग्निसे

भिन्न वक्ति नहीं, इस कथनवत् शब्दमात्रही है। एतदर्थ हे वादी ज्ञान जोहै सो ज्ञेयसे भिन्न ही सिद्धहोताहै । अरु ज्ञानकों ज्ञेयसे भिन्न सिद्धहुए सुषुप्तिविषे ज्ञेयके अभावके होते ज्ञानके अभाव का असंभव सिद्ध भया ॥ अरु जो ऐसाकहे कि सुषुप्तिविषे ज्ञेयके अभावहुए ज्ञानका अदर्शनहै ताते ज्ञानका अभावहै, सो भी बने नहीं, क्यों कि सुषुप्तिरूप ज्ञेयके ज्ञानका अंगीकारहै ताते यहां ज्ञानका अदर्शन असिद्धहै । अरु जिसक रके विज्ञानवादीके मतविषे सुषुप्तिमे भी विज्ञान का सद्भाव अंगीकार करतेहै एतदर्थ ज्ञानका अ दर्शन संभवता नहीं ॥ अरु जो कदापि ऐसाकहे कि सुषुप्तिविषे भी ज्ञानकों अपनेआपकरके ही अपना ज्ञेयपनाहै, सो भी बने नहीं, क्यो कि अ भावस्थलविषे ज्ञान अरु ज्ञेयका भेद सिद्धहोता है ताते। अरु जिसकरके अभावरूप ज्ञेयकों विषयकरनेवाला जो ज्ञान तिसकों अभावरूप ज्ञेय से भिन्नहोने करके ज्ञेय अरु ज्ञानका भेद सिद्धहै ताते सो सिद्धभयाभेद, मृतकके जीलावनेवत्, पु नः विपरीत करनेकों सेकडो विज्ञानवादीयोसे भी अशक्यहै ॥ अरु जो विज्ञानवादी ऐसाकहे कि ज्ञानकों ज्ञेयपना हीहै। तो सो भी अन्यज्ञानकरके ही ज्ञेय होवेगा । अरु सो ज्ञान भी अन्य ज्ञानकर

के ज्ञेयहोवेगा, ऐसे तुमारे पक्ष विषे अनवस्थादोष होगा, सो भी बने नहीं। क्यों कि सर्ववस्तुके समूह के विभागका संभवहैताते। अरु जिस पक्षविषे सर्व वस्तुका समूह अपनेसे भिन्न किसी भी ज्ञानका ज्ञेयहै, तिस पक्षविषे उक्त दोषहै। अरु ऐसे जब हम मानतेहोंय तब हमारे पक्षविषे अनवस्था दोष होय। अरु जिसकरके ऐसे ज्ञानको विषयकरने वाला ज्ञानरूप तीसराभाग हमोंकरके नहीं मानते हैं, किन्तु तिस ज्ञेयसे भिन्न जो ज्ञान सो ज्ञान ही है अरु ज्ञानसों भिन्न जो ज्ञेय सो ज्ञेय हीहै। इसप्रकार दूसरा विभाग ही हमोंकरके मानतेहैं। ताते हमारे पक्षविषे अनवस्थादोष संभवतानहीं ॥ अरु जो विज्ञानवादी ऐसा कहे कि तुमारेमत विषे जब ज्ञानरूप ब्रह्म आप ही अपनेका विषय नहीं, तब ब्रह्मके सर्वज्ञपनेकी हानिहोतीहै, सो। दोष— [अर्थात् जाननेयोग्य सर्ववस्तुके अज्ञानके होनेसे ही सर्वज्ञताकी हानि होतीहै और प्रकारसे नहीं, अरु अन्यथा शशशृंग (खरगोस के सींग) आदि अत्यन्त असत्यपदार्थोंके अज्ञान से किसीके भी मतविषे सर्वज्ञता नहीं होगी (अथवा सर्वज्ञताकी हानि नहीं होगी)] एतदर्थ हमारेमत विषे तिस सर्वज्ञताकी हानिरूप दोषकी प्राप्ति नहीं, (क्यों कि ज्ञानस्वरूपको अपनाआप ज्ञेयत्व शशवि-

पाणाचंतहै) किन्तु तिस विज्ञानवादीकों ही उक्त दो
पकी प्राप्तिहोतीहै । क्यों कि तिस विज्ञानवादीकरके
ज्ञानकों अवश्य ज्ञेयरूपताका अंगीकारहै ताते आ
प ज्ञानकरके ही अपना ज्ञेयपना मान्याहै । अरु ति-
स अपनेकरके अपने ज्ञेयपनेकों "अभावरूप ज्ञेय
कों विषयकरनेवाले ज्ञानकों अभावरूप ज्ञेयसें
भिन्नहोनेकरके, ज्ञेय अरु ज्ञानका अन्यपना सिद्ध
है" सो पूर्वके ग्रंथभागविषे दूषितहोनेसे अन्य ज्ञे-
यपनेके अंगीकारसे सर्वज्ञताका असंभवहै ताते ।
इस अभिप्रायसे सिद्धान्ती कहेहै]—भी तिस वि-
ज्ञानवादीकों ही होहु । हमकों तिस मायिक सर्वज्ञ
पनेके खंडनविषे क्या दोषहै, कुछ भी नहीं । अरु
विज्ञानवादीके मतविषे ज्ञान, ज्ञेयरूपहै, एतदर्थ
ज्ञानके ज्ञेयपनेके अंगीकारसे दूसरा अनवस्थारूप
दोष भी अवश्यही होगा ॥ क्यों कि विज्ञानवादी
के मतविषे ज्ञानकों आपसे अज्ञेय होनेकरके अ-
नवस्थारूपदोष अनिवार्यहै [यहां यह अर्थहै
कि विज्ञानवादीके मतविषे ज्ञानकों आपकरकेही
आपका ज्ञेयपना मान्याहै, तिसके असंभवकों "ज्ञे-
य अरु ज्ञानका पृथक्पना सिद्धहै" इस उक्त पू
र्वग्रंथकेभागविषे कथनकियाहोनेसे, परिशेष
तें ज्ञानकों अन्यज्ञानके ज्ञेयपनेके होनेसे तिस
ज्ञानका भी अन्य ज्ञाताहै, तिसका भी अन्य ज्ञाता

व्यक्तिके भेदसे इस दृष्टान्तगत प्रथम हेतुकों यहां वर्णनकरतेहैं] दृष्टान्तविषे कारणरूप बीजसे अन्यही बीज वृक्षके फलसे प्राप्तहै। अरु दार्ष्टान्तविषे तो अपने कारणका कारणरूप सोई पुरुष शरीरके भीतरकिया सुनतेहैं। [अब बीजकों सावयवहोनेसे इस दृष्टान्तगत द्वितीय हेतुकों वर्णन करतेहैं। यहां यह रहस्यहै कि दृष्टान्तविषे यद्यपि कारणरूप बीजके ही वृक्ष अरु तिसके फल अरु तिस फलके अन्तरगत बीजरूपसे परिणामतें तिन कारण अरु कार्यरूप बीजकी व्यक्तिभेदके होते भी एकताहै तथापि तिसका कारणरूप बीजकों सावयव होनेसे वृक्षवत् फलके आकारसे परिणामकों प्राप्तभयेअवयवनसे भिन्नजो अवयवहै, तिनके ही तिसफलके अन्तरगत बीजरूपसे परिणामतें उन बीजोंका भेदकरके फलका अरु तिसके अन्तरगत बीजका आधार आधेयभाव होताहै। अरु यहां दार्ष्टान्तविषे तो पुरुषकों निरवयव होनेसे शरीरका अरु पुरुषका आधाराधेयभाव बने नहीं] किंवा बीज अरु वृक्ष आदिकोंकों सावयवहोनेसे उनका परस्पर आधार अरु आधेय भाव बनेहै. अरु पुरुष निरवयवहै अरु कला अरु शरीर सावयवहैं; एतदर्थ तिनका परस्पर आधाराधेय

भाव बने नहीं । अरु जब इस हेतुकरके आका-
शका भी आधारपना शरीरकों अघटितहै, तब
आकाशके कारण पुरुषका आधारपना शरीर
कों अघटितहोय इसमें क्या कहनाहै, किन्तु
कुछ भी नहीं ॥ ताते हे वादी तैंने जो बीजका दृ-
ष्टान्तदिया सो दार्ष्टान्तके समान नहीं, किन्तु वि-
षमहै ॥ अरु जो ऐसा कहे कि दृष्टान्तसे क्या प्र-
योजनहै प्रमाणरूप श्रुतिके वाक्यकरके ही पुरु-
षकों परिच्छिन्नपनाहोवेगा । सो भी बने नहीं। क्यों
कि वाक्यकों कारकताका अभावहै । अरु जिस
करके श्रुतिका वचन वस्तुके अन्यथाकरनेविषे
समर्थ होता नहीं, किन्तु जैसा अर्थ होय तैसे अर्थ
के प्रकाशनेविषे समर्थ होताहै, ताते । "इहैवान्तः
शरीरे सोम्य स पुरुषो" । शरीरके भीतर सो पुरुष
है । यह जो श्रुतिका वचनहै सो । अंडके भीतर
आकाशहै, इस वाक्यके अर्थवत् जानना । अरु
ज्ञानका निमित्तहोनेसे दर्शन श्रवण मनन अरु
विज्ञान आदिक लिंगोंसे शरीरके भीतर परिच्छिन्न
वत् प्रतीत होताहै । एतदर्थ । हे सोम्य शरीरके भी-
तर सो पुरुषहै । इसप्रकार कहतेहैं । अरु पुनः
आकाशका कारणहुआ मृत्तिकाके पात्रसे बदरी-
फल वत् शरीरकरके परिच्छिन्न पुरुषहै, इसप्रका
रतो मूढ पुरुष भी मनसे भी कहनेकों इच्छा करता

है। इसप्रकार प्राप्तभया जो अनवस्था दोष सो निवारणकरनेकों अशक्य ही है] ॥ अरु जो ऐसा कहै कि तुमारे मतविषे भी यह अनवस्थादोष तुल्यहीहै॰-[अर्थात् हे सिद्धान्ति तुमारे मतविषे भी ज्ञानकों अज्ञेयपनेकेहुए तिसके व्यवहारकी असिद्धि होवेगी। अरु अन्यज्ञानके ज्ञेयपनेकेहुए अनवस्था होवेगी। इस अभिप्रायसे वादी शंकाकरताहै]-सो बनै नहीं॰- [हमारे मतविषे ज्ञानकों स्वप्रकाशहोनेकरके आपही करके अपने व्यवहारकी सिद्धिहै तातें, अरु ज्ञानकेभेदके अंगीकारसे अनवस्थादोषकी प्राप्ति नहीं है, इस अभिप्रायसे सिद्धान्ती समाधान करताहै] -क्योंकि ज्ञानकी एकताका संभवहै तातें। अरु सर्व देशकाल अरु पुरुषआदि अवस्थावाला एक ही ज्ञान, नामरूपादि अनेक उपाधियोंके भेदसे, सूर्य्यादिकोंके जलादि उपाधिगत प्रतिबिम्बवत्, अनेकप्रकारका भासताहै, एतदर्थ हमारे मतविषे यह अनवस्था दोष नहीं है ॥ अरु तैसे ही चैतन्यके नित्यपनेकरके अधिष्ठानपना सिद्धहै तिसके हुए इस श्रुतिविषे यह षोडश कलाका आरोप करतेहैं॥ ॥नन्तु॥ इस श्रुतिसे मृत्तिकाके पात्रविषे बदरी (बैर) के फलवत् इस ही शरीरके भीतर परिच्छिन्न पुरुषहै सो नित्य कैसे संभवे, अर्थात् संभवता

नहीं। सो कथन बने नहीं। क्यों कि सो प्राणादिक कलाका कारण है ताते। अरु जिसकरके शरीरमात्रकरके परिच्छिन्न प्राणकों श्रद्धाआदिक कलाका कारणपना निश्चयकरनेकों शक्य नही है। एतदर्थ सो पुरुष ही सर्व कलाका कारण है। अरु जिसकरके सो सर्व कलाका कारण है, ताते शरीरकों कलाका कार्य होनेसे सो शरीर पुरुषकी कार्य कला तिसका कार्यरूप अपनि उत्पत्तिसे पूर्व अविद्यमान आप शरीर सो अपनेविषे अपने कारणके कारण पुरुषकों मृत्तिकाकेपात्रविषे बदरीफलवत् परिच्छिन्नकरनेकों समर्थ होवे नहीं ॥ अरु जो कहे कि जैसे बीजका कार्य वृक्ष अरु तिसका कार्य आम्रादि फल, सो अपने कारणके कारण बीज कों अपने भीतर करनेकरके परिच्छिन्न करता है। तैसे शरीर जो है सो अपने कारणके कारण पुरुषकों भी अपने भीतर करनेकरके परिच्छिन्न करता है। सो कथन बने नहीं। क्यों कि फलका कारण वृक्ष तिसकी उत्पत्तिका कारण जो बीज तिस बीजकी अरु फलके अन्तरगत बीजकी व्यक्तिका भेद है तिस भेदकरके, अरु बीज सावयव होता है ताते, अरु पुरुषकी व्यक्तिकी एकता है ताते अरु पुरुषकों निरवयवता है ताते, [फल अरु बीजकी

नहीं, तब प्रमाणभूत श्रुति कहनेकों न इच्छाक-
रतीहोय, इसमें क्या कहनाहै ॥ ननु ! "यस्मिन्नेता
षोडशकलाः प्रभवन्ति" ! 'जिसविषे यह षोडश
कला उपजतीहै' इसप्रकार द्वितीय वाक्यविषे
पुरुषके विशेषणार्थ अध्यारोप कहाहै, पुनः ! "स
ईक्षाञ्चक्रे" ! 'सो ईक्षणकों करताभया' इत्या-
दिरूप तृतीयवाक्यसे जो कलाकी उत्पत्तिकाकथ-
न सुनाहै, सो यद्यपि अधिक अर्थ भीहै, तथा-
पि कलाकी उत्पत्ति किस क्रमसे होतीहै, इस अ-
र्थके जाननेके प्रयोजनसे ! "स ईक्षाञ्चक्रे" ! 'सो
ईक्षणकों करताभया' इत्यादिरूप यह अधिक
अर्थ भी कहतेहैं । अरु चेतनपूर्वक ही प्राणादि
कलारूप सृष्टि होतीहै, इस अर्थके जतावनेकों
चेतनके आश्रित ईक्षण (अवलोकन) का क-
थनहै ॥ इसप्रकार शंका समाधानरूप उपोद्घात
[अर्थात्, अन्यके गृहसे गोरसके मांगनेवाली
स्त्रीवत् प्रतिपादन करनेके योग्य अर्थकों मनमें
रखके तिसकी अर्थ अन्य अर्थका जो प्रतिपादन
तिसकों, उपोद्घात, कहतेहैं] यों कहके अब
तृतीयवाक्यके अर्थकों कहतेहैं ॥ हे सोम्य जो
षोडश कलावाला पुरुष भारद्वाजके पुत्र सुकेशा
नाम मुनिने पूछाथा कि । "स ईक्षाञ्चक्रे । कस्मि-
न्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्र-

तिष्ठते प्रतिष्ठास्यामीति"। 'सो किसके निकसेहुए मैं निकस्या होउंगा वा किसके स्थितहुए स्थितिकों प्राप्त होउंगा। ऐसे ईक्षणकों करताहुआ' अर्थात् सो किस कर्त्ता विशेषके देहसे निकसेहुए मैं निकस्या होउंगा अरु किसके शरीरविषे स्थितहुए मैं स्थितिकों प्राप्तहोउंगा, इसप्रकार प्राणादिककी सृष्टिके शरीरसे बाहर निकसने अरु शरीरके भीतर स्थितहोनेरूप फलकों। अरु। "प्राणाच्छ्रद्धा"। 'प्राणसे श्रद्धाकों रचताभया' इत्यादिरूप क्रम आदिककों [यहां आदि शब्दसे "लोकोंविषे नामकों रचताभया" यह आधार अरु आधेयका भेद ग्रहण करतेहैं] विषयकरनेवाले ईक्षण (ज्ञान) कों करताभया॥ इति सिद्धम् ॥ १ ॥ ६२ ॥

---

४ ॥ हे सौम्य यहां यह सांख्यमतके अनुसारी वादीयोंकी शंकाहै ॥ ननु ॥ आत्मा अकर्त्ता है अरु प्रधान (प्रकृति) कर्त्ता है, एतदर्थ पुरुषके भोग मोक्षमय अर्थरूप प्रयोजनकों अंगीकार करके प्रधान जोहै, सो महत्तत्वादिरूप आकारसे प्रवृत्त होताहै। तहां यह पुरुषको स्वतन्त्रता करके ईक्षणपूर्वक कर्त्ता पनेका जो वचनहै सो अप्रमादित है। किम्वा सत्वादि गुणोंकी साम्यावस्था (मिश्रअवस्था) मय प्रमाण प्रतिपादित प्रधानरूप सृष्टिकर्त्ताके होने

॥स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं॥
॥वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम्। म-॥
॥नोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म-॥
॥लोका लोकेषुच नाम च ॥ ४ ॥ ६३ ॥

संते। अथवा परमाणुकारणवादीके मतानुसार ईश्वरेच्छाके अनुवर्ती सृष्टिका कारण परमाणुके होतसंते। आत्माको कर्त्तापनेके अंगीकारकरनेसे (समीचीन नहीं क्यों कि) आत्माको एक अद्वैतहोनेसे, जैसे कुलालरूप कर्त्ताके दंडचक्रादि सहकारी साधनवत्, सहकारी साधनका अभाव है, ताते दुःखादि अनर्थके हेतु जे प्राणादिक संसार तिसके कर्त्तापनेका असंभवहै एतदर्थ आत्माको सृष्टिके कर्त्तापनेका जो वचनहै सो अघटितहै। अरु जिसकरके प्रत्यक्ष चेतनावान बुद्धिपूर्वक कार्यका कर्त्ता पुरुष सो अपने अर्थ अनर्थको करता नहीं। एतदर्थ भी (ज्ञानस्वरूप आत्माको) अनर्थरूप संसारके कर्त्तापनेविषे प्रवृत होना संभवे नहीं। एतदर्थ ही पुरुषके भोग मोक्षमय प्रयोजनसे ईक्षणपूर्वकत्वम् नियमित क्रम करके वर्तमान अचेतन प्रधानविषे, जैसे राजाके सर्व अर्थके करनेवाले मंत्री आदिकोविषे यह राजा है, इस आरोपवत्। "स ईक्षाञ्चक्रे"। (सो

ईक्षणको करताभया ' इत्यादिरूप यह चेतनवत् ।
आरोपहै । [अर्थात, जैसे, बालकविषे पीतरंग ।
करके युक्तारूप गुणके योगसे अग्निशब्दका प्र-
योगहै तद्वत्, मुख्य ईक्षणके कर्ताविषे विद्यमान
जे नियमित क्रमकरके प्रवर्त्तमानहोनेरूप गुण तिस
केयोगसे । "स ईक्षाञ्चक्रे" । ' सो ईक्षणकों करता
भया ' ऐसा प्रधानविषे गौण प्रयोगहै सोई उपचार
अरु आरोप करतेहैं] यह सांख्यवादीयोंका कथन
है । सो बने नहीं ॥ क्यों कि आत्माकों भोक्तापनेव
यत् कर्तापनेका संभवहै ताते । अरु जैसे सांख्य
वादीके मतविषे चेतनमात्र अपरिणामी आत्माका
भी भोक्तापना मानतेहैं, तिसप्रकार वेदवादी हमारे
मतविषे स्वरूपसे अकर्त्ता हुए आत्माकों भी मायारू
प उपाधिका किया श्रुतिउक्त प्रमाणसे जगत्का
कर्तापना घटितहै ॥ अरु जो सांख्यवादी ऐसा
कहे कि हमारे मतविषे आत्माकों अन्य महदादि त-
त्वके स्वरूपकी प्राप्तिरूप परिणामसे आत्माकी अ-
नित्यता, अशुद्धता, अनेकता, के निमित्त जे चेतनमा
त्र जे स्वरूपका विकार तिस विकारसे पुरुषके स्व-
रूपविषे ही भोक्तापना तिसके होनेसे चेतनमात्रजो
स्वरूपका विकार (अविवेकसे परिणाम) सो दोष
के अर्थ नहीं । अरु तुमारे वेदवादियोंके मतविषे
आत्माकों सृष्टिका कर्तापनाहोनेसे आत्माका अन्य

तत्त्वके स्वरूपकी प्राप्तिरूप परिणाम ही होताहै। एतदर्थ आत्माकों अनित्यता आदि सर्वदोषोंकी प्राप्ति होयगी— [पूर्वरूपके परित्यागसे अन्यरूपकी जो प्राप्ति तिसकों परिणाम कहतेहैं। सो परिणाम सजातीय अन्यरूपकी प्राप्तिके हुए, अथवा विजातीय अन्यरूपकी प्राप्तिके हुए अनित्यता आदि दोषोंकों संपादन करता ही है। एतदर्थ भोज्य (भोगनेयोग्य) के अविवेकरूप उपाधिका किया आत्माका भोक्तापना मानना योग्यहै। निसकारणकरके तिस भोज्यके अविवेकरूप उपाधिसे रचितपना सो तिस परिणामके कर्त्तापनेविषे भी तुल्य ही है। इस अभिप्रायसे भाष्यकाराचार्य्य मुख्य समाधानकों कहतेहैं। यहां यहभावहै कि परमात्मारूप पुरुषकों उपाधिकृत जो कर्त्तापनेका संभवहै ताते। अरु भ्रान्तिकरके इस परमात्मासे भिन्न अपूर्णकाम जीवोंका संभवहै ताते तिनके पुरुषार्थरूप प्रयोजनका स्थापना तिसहीप्रकारके चेतनरूप पुरुषकों भी बनता है। एतदर्थ चेतनरूप अधिष्ठानवाले अचेतनरूप प्रधानकों सो जीवोंके भोगमोक्षमय पुरुषार्थरूप प्रयोजनका सृजतापना युक्त नहीं] —यह जो सांख्यवादीयोंका कथन सो बने नहीं। क्यों कि हमारेमतविषे वास्तवमें सहकारी साधन रहित अकर्त्ता आप्तकाम, एक अद्वैत आत्माकों भी अविद्यारूप

सहकारीके आश्रय नामरूपात्मक उपाधि अरु अनुपाधिके किये भेदका अंगीकारहै, तिसकरके आत्माको नामरूप उपाधिका किया ही बंध मोक्ष अरु तिनके साधनरूप शास्त्रोक्त व्यवहारादिक विशेष मानतेहैं। अरु परमार्थ दृष्टिसे अनुपाधिकाकिया एकही अद्वितीय शुद्ध अरु सूक्ष्मबुद्धिसे ग्रहणकरने योग्य, अरु सर्व तर्कयुक्त बुद्धियोंका अविषय, अभय अरु शिव (कल्याण) रूप तत्त्व मानतेहैं। जिसविषे कर्त्तापना किंवा भोक्तापना अरु क्रिया अरु कारकका फल नही है। क्यों कि सर्व पदार्थोंको अद्वैतरूपताहे ताते॥ हे सौम्य सांख्यवादी जो वेदसे बाहर बोलनेवाले होनेसे पुरुषविषे अविद्यासे आरोपित ही कर्तापना अरु क्रिया कारकका फलहै, ऐसे कल्पिके पुनः तिससे भयकों प्राप्तहोतेहुए परमार्थसे ही पुरुषसे भोक्तापनेकों इच्छतेहै। अरु पुरुषसे अन्यतत्व प्रधानकों परमार्थवस्तुरूपही कल्पतेहुए। अरु सांख्यवादीयोंसे अन्य जे जैनादिक सो नैयायिकोंकरके शिक्षाकों प्राप्तभयीबुद्धिवालेहुए अपनेमतके खंडनकों पावतेहैं। अरु तैसे ही जैनादिकोंसे अन्य जे नैयायिकहैं सो सांख्यवादीयोंकरके अपनें मतके खंडनकों प्राप्तहोतेहैं॥ हे सौम्य इसप्रकार परस्पर विरुद्धअर्थकी कल्पनाकरनेसे २ मांसके अर्थी (श्वान शिकरादि)

जीवोंवत् परस्पर विरुद्ध क्रुद्ध भये भेदरूप अर्थ
के ही देखनेवाले हुए जिसकरके परमार्थतत्त्वकी
ओरसे दूरसे दूरही खींचे गयेहैं, ताते यथार्थ
निरुपाधि शुद्ध आत्मतत्वकेप्रबोधसे! दूरात्सुदूरं
दूरसे दूरही चलेजातेहैं। एतदर्थ जे मुमुक्षुपुरुष
हैं सो उनके मतकों अनादरपूर्वक त्यागके वेदान्त
अर्थके तत्वरूप एकताके ज्ञानकों {श्रद्धा विश्वा
स पूर्वक} आदरदेनेवालेहोंय। इस प्रयोजनके
लिये हमों (वेदवादीयों) करके इन तर्ककरनेवा
ले सांख्यवादीयोंके मतविषे कुछ दोषका दर्शन
देखावतेहैं, उनके मतकों खंडनकरनेके तात्पर्यसे
नहीं। तैसे यहां यह अर्थ शास्त्रान्तरविषे कहाहै
तथाच। "विवदत्सु खेवनिक्षिप्य विरोधोद्भवका
रणम्। तैः संरक्षितसद्बुद्धिः सुखंनिर्व्वातिवेदवित्
॥ (वेदवेत्ता जो है, उन वादीयोंसे विवादकोंकरता
हुआ विवादकाषविषे विरोधकी उत्पत्तिके कारण
(परमार्थसे भेददर्शन) कों छोड़के रक्षाकोंप्राप्त
भयी बुद्धिवालाहुआ। अर्थात् [भेद दर्शनकों
परस्पर वादीयोंसे उक्तदोषकरके ग्रस्त होनेसे अ
द्वैतही निर्दोषहै ऐसे निश्चयवाली बुद्धिकरकेयुक्त
हुआ] सर्व विकल्पसे शान्त होताहै। किंवा
['कुछ दोषका दर्शन देखावतेहैं' जिस हीकों
वर्णन करतेहुए, कर्तापने आदिकोंका आरो-

पितपनाही सांख्यवादीयोंकरके भी कहना योग्यहै ऐसा कहतेहैं] —तुमारे सांख्यमतविषे भोक्तापने अरु कर्त्तापनेरूप दोनों विकारोंके विलक्षणपनेका असंभवहे, एतदर्थ पुरुषविषे यह कर्त्तापनेरूप जातिसे अन्य जातिरूप भोक्तापनेकरके युक्त विकार कोनहै, कि जिसकरके पुरुष भोक्ता हीहै कर्त्तानहीं। अरु प्रधान तो कर्त्ता ही है भोक्ता नहीं, इसप्रकार तुमकरके कल्पना करतेहो सो कहो ॥ ननु, भोक्ता अरु चैतन्यमात्र स्वरूपही जो पुरुष है, सो अपने चेतनरूपसे ही विकारकों पावताहै, अन्यतत्त्वरूप परिणामसे नहीं। अरु प्रधान तो अन्यतत्त्वोंके परिणामसे विकारकों पावताहै, एतदर्थ सो प्रधान, अनेकरूपहे अशुद्धहै अरु जडहै, ताते विलक्षणएक शुद्ध अरु चैतन्यरूप पुरुषहै। एतदर्थ उन दोनोंके भिन्न२ धर्मरूप कर्त्तापने अरु भोक्तापनेका भी विलक्षणपनाहै, यह सांख्यवादीने कहा— [पुरुषका चैतन्यरूपसे परिणाम जो तेंने कहा - सो क्या आगन्तुक (उत्पत्ति नाशवाला) है, वा नहीं, तहां जो द्वितीयपक्षकहै तो तिस पक्षविषे कर्मजन्य कदाचितहोनेवाला भोग असिद्ध होयगा, अरु प्रथम पक्षकहै तो तिस पक्षविषे आगन्तुक विलक्षणतावाला होनेसे अनित्यता आदिककी प्राप्तिसे पुरुषका प्रधानसे कुछ विशेष नहींहै ॥ अरु जो

ऐसा कहे कि भोगके अनन्तर पुरुषको पुनः अपने स्वरूपसे ही स्थितहोनेसे अनित्यता आदिदोष नहींहै, तब प्रधानको भी प्रलयविषे विशेषके अभावसे, अपने स्वरूपकरके ही स्थितिके अंगीकार करनेसे तिसका विशेष न होगा। इसप्रकार अब सिद्धान्ति दूषण देतेहैं॥] → तब तहां सिद्धान्ति कहेहैं. यह विशेष बने नहीं, क्यों कि भोगकी उत्पत्तिसे पूर्व प्रधान अरु पुरुषके विकारके भेदको कथनमात्रता ही है ताते।→ [संक्षेपसे कथनकिये वाक्यका यहां वर्णन करतेहैं] → जबकेवल चैतन्यमात्र पुरुषको भोगकी उत्पत्तिकालविषे भोक्तापनरू विशेषहोताहै, अरु जब भोगके निवृत्तभये पश्चात् तिस {भोक्तापनारूप} विशेषसे रहित पुरुष चैतन्यमात्रही होताहै, तब प्रधान भी तैसे ही महत्तत्वादि आकारसे परिणामको पाय पश्चात् प्रलयकालविषे तिस (महत्तत्वादि) आकारको छोडके प्रधानरूपसे स्थितहोताहै, इस रीतिसे चैतन्यरूपसे पुरुषके विकारकी कल्पनाविषे भी विचार कियेहुए अर्थसे प्रधानका अरु पुरुषका कुछ भी विशेष नहीं देखतेहैं। एतदर्थ सांख्यवादीयों करके प्रधान अरु पुरुषका विशेष (विलक्षण विकार) अर्थात् दोनोंका पृथक २ विलक्षणरूप विकारहै, इसप्रकार वाणीमात्रसे ही कहाजाताहै। परन्तु सो सिद्धहोता नहीं॥→ [पुरुषका चैतन्यरूपसे

जो परिणामहै सो आगन्तुक अन्यरूप नहीं। इस प्रकार पूर्वोक्त दोनों पक्षोंमेंसे द्वितीय पक्षकों मानिके वादीकी शंकाहै]→अरु जो ऐसाकहे कि भोगकालविषे भी भोगसे पूर्ववत्, चैतन्यमात्रही पुरुषहै, तिसका कदाचित् होनेवाला अन्यरूप नहीं, एतदर्थ प्रधानसे विशेष (विलक्षण) है। सो कहना बने नहीं। क्यों कि जब इसप्रकार मानेंगे तब पुरुषकों परमार्थसे भोग होयगा। अरु कर्मसे जन्य जो कदाचित् होनेवाला भोग सो असिद्धहोगा। ←[इस दोषके निवारणार्थ आगन्तुक परिणामकों मानिके भोगकाल सम्बन्धी विकारमात्र भोगहै। सो भोग पुरुषकों ही होताहै प्रधानकों नहीं। इस प्रकार भोगके सद्भावरूप विशेषमाश्रसे वादीकी शंकाहै]→अरु जो कहे भोगकालविषे चैतन्यमात्र पुरुषका विकार परमार्थरूपही है, तिसकरके सो भोगकालसम्बन्धी विकारमात्र भोग पुरुषकों ही होताहै, प्रधानकों नहीं। एतदर्थ भोगके सद्भाव अरु असद्भावकरके प्रधान अरु पुरुषका विशेष (भेद) है←[तहां भी क्या भोगकाल सम्बन्धी विकारमात्र भोगहै, किंवा भोगकालसम्बन्धी चैतन्य मात्रगत विकारवानपना भोग है, इसप्रकार विकल्पकरिके, प्रथम पक्षविषे भोगकालमें प्रधानकों भी सुखादिक आकारसे विकारवालाहोनेसे भोग

होयगा, इसप्रकार सिद्धान्ती कहतेहैं]—सो बने नहीं, क्यों कि इसप्रकारहोनेसे भोगकालविषे प्रधानकों भी सुखादि आकारसे विकारवानहोनेसे भोक्तापनेकी प्राप्तिहोयगी॥—[अव द्वितीयपक्षानुसार वादीकी शंकाहै]—अरु ऐसाकहै कि चैतन्यमात्रका ही जो विकार सोई भोक्तापनाहै, तब उष्णतारूप विकारसे असाधारणधर्मवाले अर्थात् अग्निका असाधारणधर्म उष्णताहै, तिस धर्मवाले अग्निआदिकोंके अभोक्तापनेविषे कारणका असंभवहोगा, अर्थात् अपने असाधारण विकारवाले अग्निआदिकोंको भी भोक्तापनेकी प्राप्तिहोगी॥ अरु जो ऐसाकहै कि प्रधान अरुपुरुष इन दोनोका एककालविषे भोक्तापना है सो भी बन नहीं। क्यों कि प्रधानकों परमार्थरूपताका अभावहै तातें पुरुषके समान पारमार्थिक भोक्तापना अप्रसिद्धहै। अरु दोनोकों भोक्ताहुए परस्परके प्रकाशनेविषे दोनो प्रकाशनेके गुण-प्रधानभावके असंभववत्, प्रधान अरु पुरुषका अन्योऽन्य गुणप्रधानभाव (शेषशेषीभाव) जो पूर्व अंगीकारकियाहै तिसका असंभवहोगा॥ अरु—[ननु। भोगजोहै सो सत्वगुणप्रधान चित्तरूपसे परिणामकों प्राप्तभयी प्रकृति तिसकाही धर्महै। क्यों कि तिसचित्तकों प्रकृतिका विका-

रहोनेका संभवहै ताते। अरु पुरुषकाधर्म नहीं। क्यों कि सो पुरुष अविकारीहै ताते। अरु तिस पुरुषकों भोगके अभावका प्रसंगनहीं। क्यों कि तिस पुरुषकों तिसप्रकारके चित्तके प्रतिबिम्बके तत्व (निजरूपता) मात्रसे भोक्तापनेका कथनहोताहै, इसप्रकार वादी पूंकाकरेहै] औ कहै कि भोगरूप धर्मवाले मुख्य सत्वगुणकरके युक्त जो चित्त तिस विषे पुरुषके चेतनपनेके प्रतिबिम्बरूपसे निर्विकाररूपकोभी भोक्तापनाहै। सो भी बनै नहीं। क्यों कि जब इस तेरे कहेप्रकारहै तब पुरुषकों परमार्थसे सुखदुःखादि भोगरूप अनर्थका अभावभया तब तिसकरके किसकी निवृत्तिकेअर्थ पुरुषके मोक्षका साधन शास्त्र रचतेहैं, किन्तु किसीके भी निवृत्त्यर्थ नहीं॥ अरु जो ऐसाकहै कि परमार्थसे यद्यपि पुरुषकों अनर्थका अभावहै, तथापि अविद्याकरके आत्माविषे आरोपित जो अनर्थ तिसकी निवृत्तिके अर्थ शास्त्रकी रचनाहै। तब, परमार्थसे पुरुष भोक्ता ही है, कर्त्ता नहीं, अरु प्रधान कर्त्ता ही है भोक्ता नहीं, अरु परमार्थ करके पुरुषसे अन्य वस्तु सतरूप प्रधानहै, इसप्रकारकी जो यह सांख्यमतवादीयोंकी कल्पना सो, वेदबाह्य व्यर्थ अरु निष्प्रयोजनहै। एतदर्थ मुमुक्षुओं करके आदर करनेयोग्य नहीं॥ अरु जो सांख्य-

वादी ऐसाकहे कि तुम वेदवादीयोंके सर्वकी एकतारूप पक्षविषे भी निवारणकरनेयोग्य बन्धका अभावहै, तातें शास्त्रकी रचना आदिक मोक्षके साधनकी व्यर्थताहै। सो भी बनै नहीं, क्योंकि आत्माकी एकताके निश्चय अनुभववाले पुरुषसे विपरीत जे अज्ञानी पुरुष तिनकेप्रति दोषके सम्पादन करनेका अभावहै तातें। अरु जिसकरके शास्त्रकर्त्ता आदिक अरु तिसके फलके अर्थी पुरुषोंविषे शास्त्रकी रचना निष्प्रयोजनहै वा सप्रयोजनहै, इसप्रकारकी सो कल्पना होय। अरु आत्माकी एकताके निश्चय कियेहुए शास्त्रके कर्त्ताआदिक पुरुष, तिस आत्मासे भिन्न नहीं है। अरु तिन शास्त्रकर्त्ता आदिकोंके अभावहुए, यह शास्त्रकी रचना सप्रयोजनहै वा निष्प्रयोजनहै, ऐसी यह कल्पना अघटितहै—{ अथवा तिस एकताके निश्चयके अभावहोनेसे निवारणकरनेयोग्य जे बन्धनादिक तिनके सद्भावसे बन्धकी निवृत्तिके अर्थ यह शास्त्रकी कल्पना अघटित नहीं } [किंवा आत्माकी एकताके निश्चयहुए, तिस निश्चयका उत्पादकहोनेसे तिस शास्त्रकी प्रयोजनसहितताकों अपनेअनुभवकरके सिद्धहोनेसे, तिस आत्माकी एकताके निश्चय अनुभववाले पुरुषकरके यह शंका करनेकों भी शक्य नहीं, इसप्रकार अब कहतेहैं]—अरु

जिसकरके आत्माकी एकताकों माननेवाले तुरुष करके आत्माकी एकताके निश्चयकियेहुए शास्त्ररूप प्रमाणका प्रयोजन अंगीकारकिया, एतदर्थ शास्त्र सप्रयोजनहै किंवा अप्रयोजनहै, यह शंका करनेकों भी अप्राप्तहै। अरु जिस आत्माकी एकताके निश्चयकियेहुए कल्पनाका असंभवहै। इस अर्थकों।"यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येदित्यादि"। (जहां (जिस विज्ञानदशाविषे) तो इसपुरुषकों सर्व आत्माही होताभया, तहां किसकरके किसकों देखे, इत्यादि।) यह शास्त्रकहताहै। अरु।"यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितरइतरं पश्यति। इत्यादि"। (जहां द्वैतवत् होताहै तहां अन्य अन्यकों देखताहै) इत्यादिरूप यह बृहदारण्यक उपनिषद्रूप शास्त्र, अज्ञानीकेविषे शास्त्रकी रचनाआदिकके संभवकों कहताहै। अरु।"अविभक्ते विद्याऽविद्ये परापरे"। (पर अरु अपररूप विद्या। अरु अविद्या भिन्नरूपहै) इत्यादि शास्त्रके आदिविषे ही विद्या अरु अविद्याका भेद सूचितकियाहै एतदर्थ वेदान्तशास्त्ररूप प्रमाण महाराजाकी युक्तिरूप भुजाकरके रक्षित इस आत्माकी अभेद एकतारूप देशविषे तार्किकमतके वादरूप शास्त्र करके। युक्त योधोंका प्रवेश कदापि होता नहीं॥ हेसौम्य इसप्रकारके कथनकरके ब्रह्मकों अविद्याकृतनाम

रूप उपाधिकरके रचित अनेक प्रक्ति अरु साधन के किये अनेकपनेके सद्भावसे, ब्रह्मकों सृष्टिआदिकोंके कर्त्तापनेविषे, दंडचक्रादिवत्, साधनका अभावरूपदोष अरु अपनेआपके अर्थ अनर्थका कर्त्तापना आदि दोष जो पूर्व सांख्यमतवादीने कहाथा, तिसका खंडनभया जानना ॥ अरु सांख्यवादीने जो पूर्व दृष्टान्त कहाथा कि, जैसे राजाके सर्वकार्यके कर्त्ता कार्याध्यक्षविषे उपचारसे, "यह राजाके कार्यका कर्त्ता राजाहे," इसप्रकार कहतेहैं, सो दृष्टान्त यहां बने नहीं। क्यों कि ! "स ईक्षाञ्चक्रे" (सो ईक्षणकों करताभया)। इस प्रमाणरूपश्रुतिके मुख्य अर्थका बाधहै. ताते। अरु {यजमान पाषाणहै} इत्यादि स्थलविषे जहां शब्दका मुख्यार्थ संभवे नहीं, तहां ही शब्दकी गौणीवृत्तिकी कल्पनारूप उपचार देखाहै। अरु यहां प्रधानके पक्षविषेतो; अर्थात्— [प्रधानके पक्षविषे केवल ईक्षणकी प्रतिपादक श्रुतिका असंभवरूप दोषहै, ऐसे नहीं. किन्तु वास्तवसे तो जिसकों जगत्का सृष्टापना भी संभवता नहीं, ऐसे अब कहतेहैं। यहा यह अर्थहै कि प्रधानकी मुक्तपुरुषकों छोडके बद्धपुरुषोंके प्रति ही प्रवृत्ति अरु कर्त्ता कर्म आदिकको अपेक्षासे बन्ध अरु मोक्ष आदि शब्दके वाच्य भोग मोक्षके अर्थ नियमित प्रवृत्ति संभवे

नहीं। इस कथनकरके पुरुषके अर्थ. भोग मोक्षमय अर्थरूप प्रयोजनकों अंगीकारकरके प्रधान प्रवृत्त होताहै। इसप्रकार जो पूर्व शंकाके अवसरविषे सांख्यवादीने कहारहा सो खंडन किया] —अचेतनरूप प्रधानकी युक्त अरु बद्धपुरुषोंकी अपेक्षासे, अरु कर्त्ता कर्म देश अरु कालरूप निमित्तकी अपेक्षासे पुरुषकेप्रति बंध अरु मोक्ष आदिक फलके अर्थ नियमित प्रवृत्ति बने नहीं। अरु हमों करके उक्त सर्वज्ञ ईश्वरके कर्त्तापनेविषे तो उक्त प्रवृत्ति बनेहै॥ इस प्रकार वादीके पक्षकों खंडनकरके, अब श्रुतिके व्याख्यानकों कहतेहुए! "स प्राणमसृजत"! 'सो प्राणकों सृजता भया' इस वाक्यके तात्पर्यरूप अर्थकों कहतेहैं। ईश्वररूप पुरुषकरके एजावत्, सर्वकार्यविषे अधिकारी ऐसा प्राण सृजाजाताहै॥ ऐसे तात्पर्यार्थकों कहके अब प्रश्नपूर्वक अक्षरार्थकों कहतेहैं॥ प्र०॥ हे भगवन् कैसे सृजताभया॥ उ०॥ "स प्राणमसृजत"। 'सो प्राणकों सृजता भया' सो पुरुष, उक्तप्रकारसे त्रिकालवर्त्ति वस्तुओंको विषयकरनेवाले ज्ञानरूप ईक्षणकों करके सर्वके प्राणमय (समष्टिप्राणरूप) हिरण्यगर्भनामवाले सर्व प्राणियोंके करणों (इन्द्रियों) के आधाररूप अन्त-

रात्माकों सृजताभया। अरु—। "प्राणाच्छ्रद्धा"। प्राणसे श्रद्धा।—इस प्राणसे सर्वप्राणियोंकी शुभकर्म विषे प्रवृत्तिकी कारणरूप श्रद्धाकों सृजता भया। तिसके पश्चात् कर्मफलके उपभोगके साधनरूप देहके अधिष्ठान अरु कारणरूप पंचीकृत पंचमहाभूतोकों सृजताभया। तहां। "खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी"। आकाश वायु ज्योति जल पृथिवी (कों सृजताभया)।—शब्दगुणवाले आकाशकों, अरु अपनेगुण स्पर्श अरु कारणके गुण शब्दकरके युक्त दोगुणवाले वायुकों, अरु तैसे ही अपने गुण रूप अरु कारणके गुण शब्द अरु स्पर्शकरके युक्त तीनगुणवाले तेज (अग्नि) कों, अरु तैसे ही अपनेगुण रस अरु कारणके गुण शब्द स्पर्श अरु रूपकरके युक्त चार गुणवाले जलकों, अरु तैसे ही अपने गुण गंध अरु कारणके गुण शब्द स्पर्श रूप रस, इन सर्वके मिलनेकरके पांच गुण वाली पृथिवीकों सृजता भया। अरु—। "इन्द्रियम्। मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं"। इन्द्रियोंकों मनकों अन्नकों अरु वीर्यकों (सृजताभया)।—तैसे ही तिन हीं पंच भूतोंसे अपंचीकृत अवस्थाविषे ज्ञानके अर्थ अरु कर्मके अर्थ दशासंख्यावाले दोप्रकारके, अर्थात् ज्ञानके अर्थ पांच ज्ञानेन्द्रियकों अरु कर्मके अर्थ पांच कर्मेन्द्रियकों, अरु तिन इन्द्रियोंके नियामक

शरीरविषेस्थित संशय अरु संकल्प विकल्पादि लक्षणवाले मनकों सृजता भया। अरु इस ही प्रकार प्राणियोंके कार्य अरु कारणकों सृजके तिनकी स्थितिके अर्थ व्रीहि (तंदुल-धान्य) अरु यव आदिरूप अन्नकों सृजताभया। तिसके पश्चात् उस अन्नकों भोजनकियेहुए से, सर्वकर्मविषे प्रवृत्तिके साधन वीर्य (बल) कों सृजताभया। अरु "तपो मन्त्रा कर्म लोका लोकेषु च नाम च"। ॥ तपकों मन्त्रोंकों लोककों लोकविषे नामकों (सृजताभया) ॥—॰अन्तःकरणकी अशुद्धताकरके भया जो पापाचरण तिन पापोंकरके संकरता (मिश्रभाव) कों प्राप्तभये तिस बलवाले प्राणियोंके संकरताके निवारणार्थ चित्तशुद्धिके साधन तपकों सृजताभया अरु तिन तपसे शुद्धभयेहैं अन्तरके अरु बाह्यके करण जिनोंके, ऐसे प्राणियोंके अर्थ कर्मके साधनभूत जे ऋग् यजु साम अरु अथर्वणवेदरूप मंत्रोंसे अग्निहोत्रादिरूप कर्म होता भया। अरु तिन कर्मोंसे कर्मके फलरूप चतुर्दशलोक होतेभये। अरु तिन लोकों विषे उत्पन्नभये प्राणियोंका देवदत्त यज्ञदत्त विष्णुदत्त आदिरूप नामहोताभया— ॥ [ननु, ईश्वरके सृष्टापनेके कथनसे कलाओंका सत्यपना अंगीकार करना चहिये। क्यों कि शुक्तिरजत आदिकरूप आरोपविषे सृष्टपने (उत्पन्नहोने) के

व्यवहारका अभावहै ताते, यह आपोकाकरके; नेत्र-
विषे अंगुलीके धारण अरु नेत्र मर्दन आदिक प्र-
यत्नसे उत्पन्नकिये दो चन्द्र मशक अरु मक्षिका
आदिकोंके आरोपके देखनेसे, अरु । "अथ रथा-
न्रथयोगान् पथः सृजत इति"। (अथ जाग्रतके अ-
नन्तर, रथको अरु रथमें जुडनेवाले अश्वादिकों
कों अरु मार्गोंकों सृजताभया, इस बृहदारण्यकी
श्रुतिविषे उत्पन्नहोनेकरके उक्त स्वप्नके पदार्थोंकी
भ्रमरूपताके देखनेसे, ईश्वरकरके रचित कलाओं
का सत्यपना मानना चाहिये यह कहना बने नहीं।
इस अभिप्रायसे अब भाष्यकाराचार्य कहतेहैं । य-
हां तिमिरपाद्जो है सो नेत्रविषे अंगुलीके धरने आ
दिक निमित्तके ग्रहणार्थ है] → इसरीतिसे यह सो
लहकला, प्राणियोंकी अविद्या आदि दोषरूप बीज
की अपेक्षासे, तिमिरदोषकरके युक्त दृष्टिसे सृजेहु-
ए दो चन्द्र मशक अरु मक्षिका आदिकोंवत्, अरु
स्वप्नके दृष्टाकरकेसृजेहुए सर्व स्वप्नके पदार्थोंवत् सृ-
जीहुईहै । पुनः→[इसप्रकार आत्माके निश्चयार्थ
अध्यारोपकों कहके अब तिसके अपवादको प्रकट
करतेहैं] → समुद्रविषे नदीयोंवत् तिस ही पुरुष
विषे अपने२ नामरूपादि उपाधियोंके भेदकों त्या-
गके अतिप्रायकरके लीनहोतीहैं ॥ ४ ॥ - ६३ - ॥

॥ स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाःसमुद्रा-॥
॥यणाः समुद्रंप्राप्यास्तंगच्छन्ति भिद्येते तासां
॥नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ॥

५॥ हे सौम्य अब उक्त कलाओंके अपवादकों भी सविस्तर दृष्टान्तसहित श्रवणकरो ॥ "स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति"। "सो जैसे यह नदीयां बहतीहुई अरु समुद्रहै अयन (आत्मभाव) जिनका ऐसी हुई समुद्रकों पायके अस्तताकों प्राप्तहोतीहैं"→सो समुद्रविषे नदीके लयका दृष्टान्त कैसेहै, तहां कहतेहैं। जैसे लोकविषे यह नदीयां बहतीहुई अरु समुद्रहै आयन अर्थात् {आदि अन्तमें आत्मभाव} जिनका ऐसी हुई समुद्रकों पायके अपने नामरूपके तिरस्काररूप अस्तताकों पावतीहैं। अरु→।"भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते"। "अरु तिनके नाम (अरु) रूप नाशकों पावतेहैं समुद्र ऐसे ही कहतेहैं"→अस्तकों प्राप्तभयीं उन नदीयोंके गंगा यमुना गोदावरी आदि लक्षणवाले नाम अरु रूप यह दोनों नाशकों पावतेहैं। अरु तिन नामरूपके नाशभये पीछे अवशेषरहा जो जलरूप वस्तु, सो समुद्र ऐसे कहतेहैं ॥ हे सौम्य। जिसप्रकार यह दृष्टान्तहै→। "एवमेवास्य परि-

॥एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः॥
॥पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति ।॥
॥भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते॥
॥स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेषश्लोकः॥५॥

द्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति"। (ऐसे ही इस परिद्रष्टाकी यह षोडशकला (सो) पुरुषहै अयन जिनका ऐसीहुई पुरुषकों पायके अस्तकों पावेहैं ;—तैसे ही, उक्त लक्षणवाला प्रसंगविषे प्राप्तभया पुरुष जो परिद्रष्टा, अर्थात् अपने प्रकाशके कर्त्ता सूर्यवत् सर्वओरसे स्वरूपभूत दर्शनका कर्त्ता,है इस परिद्रष्टाकी । यह प्राणादि सोलहकलाहैं । सो उक्त सोलहकला, नदीके अयनरूप समुद्रवत्, पुरुषहै अयन (आत्मभावकी प्राप्ति) जिन कलाकी ऐसी हुई पुरुषरूप आत्मभावकों पायके अपने नामरूपके तिरस्काररूप अस्तताकों पावतीहै । अरु—। "भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते"। (तिसके नामरूप नाशकों पावतेहैं, पुरुष ऐसे कहते हैं ;—तिन कलाके प्राणादिक लक्षणवाले नामरूप नाशकों पावतेहैं । अरु नामरूपके नाशभयेपीछे जो कि अविनाशी तत्व अवशेष रहताहै, सो ब्रह्मवेत्ताओंकरके पुरुष ऐसे कहतेहैं ॥ जो

पुरुष, गुरुने देखायाहै कलाके लयका मार्ग जिसकों, ऐसा हुआ इसरीतिसे जानताहै।— ।"स एषोऽकलोऽमृतो भवति"। ःसो यह अकल अमृतहोताहै;—सो यह पुरुष, अविद्या काम अरु कर्म करके जन्य जो प्राणादिक कला तिनके विद्याकरके नाशभये कलारहित होताहै। अरु जिसकरके अविद्याकृत कलारूप निमित्त (उपाधि) का किया। देहसे निकलने आदिक शब्दका वाच्य मरणादिक व्यवहाररूप मृत्युहै, ताते उनकलाके नाशभये यह पुरुष कलारहित होनेसे ही अमृत (मरण रहित) होताहै।— ।"तदेषश्लोकः"। ःतिसविषे यह श्लोकहै;—तिस ही इस अर्थविषे यह श्लोक (अग्रिम वाक्यरूप वेदका मंत्र) प्रमाणहै ॥ ५ ॥ ६४ ॥

६॥ हे सौम्य ।"अरा इव रथनाभौ"। ःजैसे रथकी नाभिविषे अरा; अर्थात्—[रथके चक्र(पहिया) की नाभि (मध्यका काष्ठ) जिसकों रथनाभि कहतेहैं, तिस रथनाभिविषे अरु मार्गकों स्पर्श करनेवाली चक्ररूप नेमी (पुठि) तिसविषे लगेहुए खडे काष्ठ तिसकों रथचक्रका परिवार कहतेहैं। अरु तिन ही कों अरा कहतेहैं] सो, जैसे रथचक्रके परिवाररूप अरा रथके चक्रकी नाभिविषे प्रवेशकों प्राप्तभये तिस रथचक्रके आश्रितहोतेहैं। तैसे

॥ अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् ॥
॥प्रतिष्ठिताः । तं वेद्यं पुरुषं वेद यथामा
॥वो मृत्यु परिव्यथा इति ॥ ६ ॥ ६५ ॥

ही — । "कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः" । 'कला जिसविषे आश्रितहै' — प्राणादिकला जिस पुरुषविषे, उत्पत्ति स्थिति अरु लय; इन तीनों कालोंविषे आश्रितहोतेहै — । "तं वेद्यं पुरुषं वेद" । 'तिस जाननेयोग्य पुरुषकों जानना' — तिस कलाके आत्मरूप जाननेयोग्य सर्वत्र पूर्णहोनेसे अथवा सर्व शरीरोंरूपी पुरविषे रहनेसे पुरुष तिस पुरुषपदसे लक्ष्य पुरुषकों जैसाहै तैसाही जानना ॥ हे शिष्यो — । "यथा मा वो मृत्यु परिव्यथा" । 'तुमकों मृत्यु पीडा मत करो' — तुमकों मृत्यु जो है सो क्लेशकों प्राप्त मतिकरो ॥ अर्थात् जिसकरके तुम क्लेशकों प्राप्तभये दुःखी ही हो, एतदर्थ मैं कहता हौं कि तुमारेको क्लेश मत प्राप्तहो । इत्यभिप्रायः ॥ ६ ॥ ६५ ॥

७ ॥ हे सौम्य पिप्पलादनाम मुनीश्वर आचार्य उक्तरीत्या तिन अपने प्रश्नकरताओंकों उक्त उपदेशकरके पुनः — । "तान् होवाच" । 'तिनकेप्रति कहतेभये' — तिन अपने शिष्योंकों कहतेहुए कि हे प्रियदर्शन हे शिष्यो — । "एतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद" ।

॥नान होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म ॥वेद नातः परमस्तीति ॥७॥ ६६॥

ं इतना ही परब्रह्महै इसकों मैं जानता हों ं इतना ही जाननेयोग्य परब्रह्महै इसकों मै जानताहों । अरु "नातः परमस्ति इति"। ं इससे श्रेष्ठ नहींहै ं इस कहेहुए परमपुरुषसें अन्य अत्यन्त श्रेष्ठ जाननेयोग्य कोई नहीं है । हे सौम्य इसप्रकार अपने शिष्योंकों अज्ञात अरु अवशेष रखने योग्य अन्य वस्तुके सद्भावकी आशंकाकी निवृत्तिकेअर्थ अरु हम कृतार्थभये इसप्रकारकी निश्चयआत्मक बुद्धिके जननार्थ पिप्पलादमुनीश्वररूप सर्वज्ञ आचार्यने कहाहै ॥७॥६६॥

८ ॥ हे सौम्य जब पिप्पलादमुनीश्वररूप आचार्यसे उपदेशकों पाय निःसंशयभये वे सुकेशा आदि ६ औ शिष्य आप कृतार्थ भये, तिस निःसंशय कृतार्थ कर्त्ता गुरुके अर्थ ब्रह्मविद्याके प्रतिउपकार (बदला) कुछ भी न देखते भये ॥ प्र०॥ तब क्या करते भए ॥ उ०॥ "ते तमर्चयन्तः"। ं वे तिसका पूजनकरते हुए ं । अर्थात् वे छऔ शिष्य तिस पिप्पलादनामवाले अपने गुरुकों दोनो पादों विषे पुष्पांजली अर्पणकरनेसे अरु मस्तक साष्टा

त्मन अभयके दाता मद्गुरुरूप पिताके पूजनेकी योग्यताविषे क्या कहताहै ॥ एतदर्थ । "नमः परम ऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्य इति"। ! परमऋषियोंके अर्थ नमस्कार होहु, परमऋषियोंके अर्थ नमस्कार होहु ; ब्रह्मविद्याके सम्प्रदायके कर्त्ता परम ऋषियोंके अर्थ नमस्कार होहु ॥ यहां जो द्विवार कथनहै सो ब्रह्मविद्याके आचार्योंविषे आदरार्थहै अरु 'इति' शब्द उपनिषद्‌की समाप्त्यर्थ है ॥ इति सिद्धम् ॥ ८ ॥ ६७ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥इति प्रश्नोपनिषद् गत षष्ठप्रश्न भाषा ॥

॥टीका समाप्ता ॥

॥इति प्रश्नोपनिषद् सम्पूर्णम् ॥

॥हरिः॥

॥ ॐ ॥

॥ तत्सत् ब्रह्मार्पणम ॥

॥ते तमर्च्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽ-॥
॥स्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति ।
॥नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्य इति॥
॥ ८ ॥ ६७ ॥
॥इतिश्रीप्रश्नोपनिषद्भत षष्ठ प्रश्नः॥
॥इति प्रश्नोपनिषद्॥

व प्रणिपात (दंडवत्) से पूजनकरते हुए, कहते भये ॥प्र०॥ क्या कहते भये ॥ उ० ॥ "त्वं हि नः। पिता योऽस्माकं"। ‹ आपहमारे पिताहो › । हे गुरो आप हमारे नित्य अजर अमर अभय ब्रह्मरूप शरीरके विद्याकरके जनक होनेसे पिताहो। अरु "अविद्याया परं पारं तारयसीति"। ‹ जो अविद्या-से पर पारकेताईं तारनेहो ›-जो आप ही विपरीत ज्ञानमय जन्म जरा मरण रोग अरु दुःखादिरूप मकरादि तिनकरके युक्त जो अविद्यारूप महासागर तिससे,पर विद्यारूप दीर्घ नौकाकरके, महासागरके पार वत्,-अपुनरावृत्तिरूप मोक्ष नामवाले पारकेताईं हमकों पारकरतेहो, एतदर्थ आपका हमारेप्रति अन्य (जन्मदायक) पितासे अधिक पितापना घटितहै ॥ अरु जब अन्यपिता भी शरीरमात्रकों ही उत्पन्न अरु पालन पोषण करताहै तथापि लोकविषे अत्यन्त पूजने योग्यहै, तब अ-

त्मक अभयके दाता ब्रह्मरूप पिताके पूजनेकी योग्यताविषे कथा कहताहै ॥ एतदर्थं "नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्य इति"। ः परमऋषियोंके अर्थ नमस्कार होहु, परमऋषियोंके अर्थ नमस्कार होहु; ब्रह्मविद्याके सम्प्रदायके कर्ता परमऋषियोंके अर्थ नमस्कार होहु ॥ यहां जो द्विवार कथनहै सो ब्रह्मविद्याके आचार्योंविषे आदरार्थहै अरु 'इति' शब्द उपनिषद्‌की समाप्त्यर्थ है ॥ इति-सिद्धम् ॥ ८ ॥ ६७ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥इति प्रश्नोपनिषद् गत षष्ठ प्रश्न भाषा ॥

॥टीका-समाप्ता ॥

॥इति प्रश्नोपनिषद् सम्पूर्णम् ॥

॥हरिः॥

॥ ॐ ॥

॥ तत्सत् ब्रह्मार्पणम ॥
